श्री हिन्दी जैनागम प्रकाशक सुमतिकार्यालय ग्रन्थाङ्क-१४

अर्हम् ।

वाचनाचार्य श्रीपद्मराजगणिसंदृब्धः

श्रीभावारिवारण-पादपूर्ति-स्तोत्रादि-संग्रहः

संग्राहकः संशोधकश्च—
खरतरगच्छालंकार-हिन्दीआगमोद्धारक-
श्रीमज्जिनमणिसागरसूरीश्वराणां
शिष्यो मुनि-विनयसागरः

प्रकाशकः—

श्रीहिन्दीजैनागम प्रकाशक सुमति कार्यालय
जैन प्रेस, कोटा.

वीराब्द २४७८] प्रथमावृत्तिः [हिन्द सं० १

भेट

अर्हम् ।

विविधग्रन्थनिर्माणकारकाणां साहित्यशा-
चस्पतिनवरत्नश्रीगिरिधरशर्म्मकवि-
राजमहोदयानां सम्मतिः—

विद्वद्वरमुनिराजश्रीपद्मराजगणिगुम्फितं भावारिवारणा-न्त्यपादसमस्यापूर्त्यात्मकं स्वोपज्ञव्याख्यासहितं भगवतो जि-नदेवस्य समसंस्कृतस्तवनं मया विगतनेत्रशक्तिना स्वपुत्र्याः शकुन्तलाकुमार्या वदनात् कर्णगोचरमकारि। स्तवनमिदं कर्त्तुः शब्दशास्त्रोपरि महान्तमधिकारं सूचयति, वाचकानां च चित्त-चमत्कृतिं जनयति । दुरूहस्यास्य मुद्रणं परमविद्यानुरागिमु-निराजश्रीमणिसागरसूरिमहोदयानां शिष्येणायुष्मता मुनिवर-विनयसागरमहोदयेन परिश्रमपूर्वकं सम्पाद्य कृतमिति प्रसी-दति चेतः । सम्पादयितास्य शरदः शतं जीवतु, बहूनि बहूनि सत्कार्याणि च विदधद् गुरुजनानां लोकानां च सर्वेषां सुख-शान्तिं समर्पयतु ।

नवरत्नसरस्वतीभवनम् झालरापत्तनं नगरम्	श्रीगिरिधरशर्म्मा

शुद्धाशुद्धिपत्रम् ।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धिः	शुद्धिः
६	२	भवपारण	तव पारण
६	१०	पारणादाय दानेन सद्मु	पारणादाप्ति मुद्मग दानेन
६	२१	परविश स्थूलता	परमविसंस्थूलता
१२	१८	मंडलं बिबं	बिंबं मण्डलं
१३	१६	अगस्तयस्तं	अगस्त्यस्तं
१६	२४	तरकांड	तरंड
१७	४	पंचविंशतां	पंचविंशति
१६	८	बहुभवभया	बहुभवभयारंभरीणाय
२०	१२	स्वकर्त्तरि	स्तवकर्त्तरि
२१	४	निष्ककषपट्टाः	निकषकषपट्टाः
२१	६	विभ्रांत्ति	विभ्रांतिं
३२	६	कान्तिपङ्क्तयः	कान्तिपंक्तयः
३२	६	भवन्	भवद्
३२	१३	अमरनिकरेणामर वृन्देन	अमरनिकरामरवृन्देन
४०	३	पाध्यानां	पाध्यायाना



प्रस्तावना

जैन साहित्य की विविध विशेषताओं में पादपूर्ति साहित्य भी एक है। ११ वर्ष पूर्व मैने अपने **'जैनपादपूर्ति साहित्य'** शीर्षक लेख में तब तक ज्ञात समस्त छोटे बड़े जैन पादपूर्ति रचनाओं का परिचय प्रकाशित किया था, जो कि 'जैन सिद्धान्त भास्कर' के भा. ३ कि० २।३ में प्रकाशित हुआ था। अद्यावधि प्राप्त पादपूर्ति काव्यों में सब से प्राचीन आ. जिनसेन का पार्श्वाभ्युदय काव्य है, जो कि महाकवि कालिदास के मेघदूत की समग्र पादपूर्ति के रूप में बनाया गया है। आ. जिनसेन का समय ६ वीं शती है। इसके पश्चात १५ वीं शती से यह क्रम पुनः चालू होता है, और १७ वीं १८ वीं शती में बहुत तेजी पर आ जाता है, जोकि अबतक विद्यमान है। मेरे पूर्वोक्त लेखमें मेघदूत के ७, शिशुपाल वध के १. नैषध के १, पादपूर्ति काव्य, एवं जैन स्तोत्रों में भक्तामर पर १७, कल्याणमंदिर पर ७, उवसग्गहरं पर १, (तेजसागर रचित) संसारदावा की ५ *, अन्य स्तुतियों की ५, जैनेतर महिम्न स्तोत्र पर १, कलाप सन्धि पर १, अमरकोष प्रथम श्लोक की १, पादपूर्ति रचनाओं का परिचय दिया गया था। उसके पश्चात् और भी अनेक रचनाओं का पता चला है, जिनका नामोल्लेख यहां कर दिया जाता है–

१–रघुवंश तृतीयसर्ग पादपूर्तिरूप जिनसिंहसूरि पदोत्सव काव्य र. उपा. समयसुन्दर (प्रेस कापी, हमारे संग्रह में)

२–किरातार्जुनीय प्रथमसर्ग समस्या पर्वलेख, पत्र ६, विजय धर्मसूरि–ज्ञानमंदिर, आगरा.

***इनमें नं ३ का रचयिता ज्ञानसागर है, जिसकी प्रति हमारे संग्रह में हैं।**

३-महिम्न पादपूर्ति, ऋद्धिवर्द्धनसूरि कृत ऋषभस्तोत्र, श्लोक ३३
(उ. सुखसागरजी व हरिसागरसूरिजी के पास).

४-भक्तामर पादपूर्ति

१. भक्तामर शतद्वयी	दि. पं लालाराम शास्त्री (प्रकाशित)
२. भक्तामर पादपूर्त्यात्मकं	गिरिधर शर्मा नवरत्न
३. चन्द्रामलक भक्तामर	जयसागरसूरि
४. पादपूर्त्यात्मकं स्तोत्रम्	विवेकचन्द्र
५. हरिसागरसूरि गुणवर्णनरूप	कवीन्द्रसागर

५-कल्याणमंदिर पादपूर्ति—

१. लक्ष्मीवल्लभ शि. लक्ष्मीसेन रचित श्लो. ४५.
(पत्र १ हमारे संग्रह में है)

२. पूज्य गुणादर्शकाव्यम् ,स्था. घासीलाल (सानुवाद श्रीलालचरित्र में प्र.)

३, कालू भक्तामरम् तेरहपंथी साधु रचित (उ. तेरापंथी इतिहास)

४ विजयक्षमासूरि लेख श्लो. ३८, सं० १७७८ रचित (विजयधर्मसूरि ज्ञानमंदिर आगरा)

५. कल्याण मंदिर पादपूर्त्यात्मकं स्तोत्रम् पं० गिरधरशर्मा

६. उवसग्गहर पादपूर्ति, जिनप्रभसूरि या लक्ष्मीकल्लोल रचित गा. २०

७. संसारदावा पादपूर्ति, लक्ष्मीवल्लभ रचित पार्श्वस्तवन गा. १७
(भुवनभक्तिभंडार बं. १२, हमारे व मुनि विनयसागरजी के संग्रह में)

समस्या स्तव के नाम से अन्य अनेक स्तोत्र प्राप्त हैं पर भावारिवारण की पादपूर्ति की कोई भी रचना अद्यावधि प्राप्त नहीं थी। हर्ष का विषय है कि **मुनि श्रीविनयसागरजी** की शोध से यह प्राप्त हुई है, एवं उन्हीं के प्रयत्न से यहां प्रकाश में भी आरही है। आशा है आपका साहित्यानुराग दिनोदिन इसी प्रकार अभिवृद्धि पाता रहेगा।

भावारिवारण स्तोत्र के मूल रचयिता

जिस भावारिवारण स्तोत्र की पादपूर्ति प्रस्तुत ग्रन्थ में प्रकाशित हो रही है, उस मूल स्तोत्र के रचयिता जिनवल्लभसूरिजी १२ वीं शताब्दि के

समर्थ विद्वान थे, आपके अन्य अनेक सुन्दर स्तोत्र, काव्य एवं सैद्धान्तिक ग्रन्थ उपलब्ध हैं, जिसका संग्रह एक स्वतंत्र ग्रंथ के रूप में प्रकाशित करने का मुनि विनयसागरजी का विचार है, अतः उनके सम्बन्ध में उसी ग्रंथ में प्रकाश डाला जायगा। भावारिवारण समसंस्कृत भाषा में है, ऐसी रचना निर्माण करने के लिये भाषा पर पूर्ण अधिकार एवं शब्दचयन के लिये विशाल शब्दकोष–ज्ञान अपेक्षित है, आचार्यश्री की विद्वता असाधारण थी, प्रस्तुत कृति आपकी सफल रचना है। ऐसी अन्य रचनाएं इनीगिनी ही प्राप्त है। समसंस्कृत में रचना का प्रारंभ आ० हरिभद्रसूरिजी के संसारदावा स्तुति से होता है।

इसी ग्रंथ में प्रकाशित दूसरी रचना पार्श्वस्तोत्र पद्मराज की (स्वोपज्ञ वृत्ति सहित है,) और तीसरी रचना संग्राम नामक दण्डकमयी जिनस्तुति के रचयिता भुवनहिताचार्य है, जिनके रचित नेमिनाथ स्तोत्र (गा. २५ आदि पद—सिरी गिरीसर रेवय मंडण के अतिरिक्त कुछ भी ज्ञात नहीं है। ऐसी दण्डक स्तुतियें ४–५ ही अवलोकन में आई हैं, इसका छंद बड़ा लम्बा होता है। यह कृति भुवनहितसूरिजी की विद्वता की सूचक है।

भावारिवारण पादपूर्ति के रचयिता की गुरुपरंपरा

इस ग्रन्थ में प्रकाशित *'भावारिवारण पादपूर्ति स्तव' आदि के रचयिता वा. पद्मराज खरतरगच्छाचार्य जिनहंससूरिजी के विद्वान शिष्य महोपाध्याय पुण्यसागरजी के शिष्य थे, अतः जिनहंससूरि और महो. पुण्यसागरजी का संक्षिप्त परिचय देकर आपकी साहित्य सेवा एवं शिष्य संतति का दिग्दर्शन कराया जा रहा है।

जिनहंससूरि:— आप जिनसमुद्रसूरिजी के पट्टधर थे। सेत्रावा नगर वास्तव्य चोपड़ा गोत्रीय सा. मेघराज की धर्मपत्नी कमलादे (हिंगलदे) की

---

*मूल भावारिवारण स्तोत्र काव्यमाला में एवं जयसागर उपाध्याय की वृत्ति सहित हीरालाल हंसराज द्वारा प्रकाशित हो चुका है। इस स्तोत्र पर मेरुसुन्दर आदि की अन्य कई वृत्तियें, अवचूरि, और टब्बादि उपलब्ध हैं।

कुक्षि से सं. १५२४ में आपका जन्म हुआ था। सं. १५३५ में ११ वर्ष की अल्पावस्था में जेसलमेर में आपने दीक्षा ग्रहण की थी। सं १५५५ *के ज्येष्ठ शुक्ला ६ को बीकानेर के मंत्रि कर्मसिंह वच्छावत ने लक्ष पीरोजे द्रव्य व्ययकर आचार्य शान्तिसागरसूरि से सूरिमंत्र दिलाया, उस समय मंत्रीश्री ने पदोत्सव बड़े समारोह से किया। ग्रामानुगाम विहार कर धर्म प्रचार करते हुए एक समय आप आगरे पधारे। श्रीमालज्ञातीय डुंगरसी और उसके भाई पामदत्त ने प्रवेशोत्सव बड़े धूमधाम से किया, जिसका वर्णन उ. भक्तिलाभ रचित गीत ×में पाया जाता है। बादशाह सिकन्दर ने पिशुनों के कथन एवं ईर्ष्यावश आपको बंदी कर लिया पर आपने उसे चमत्कार दिखाकर ५०० कैदियों को छुड़ा "**बंदी छोड़**" विरुद प्राप्त किया। इससे जैन शासन की बड़ी प्रभावना हुई। सं. ≠१५८२ (१५७२?) में आपने आचारांगसूत्र की दीपिका बीकानेर में बनाई। आपके रचित कल्पान्तर्वाच्य की ६७ पत्रों की प्रति डुंगरजी भन्डार जैसलमेर में प्राप्त है। आपने अनेकों विद्वानों को उपाध्यायादि पद प्रदान किये और मंदिर व मूर्त्तियों की प्रतिष्ठाऐं की। सं. १५८२ में धर्म प्रचार करते हुए आप पाटण पधारे और ३ दिन का अनशन कर स्वर्ग सिधारे।

महोपाध्याय पुण्यसागर

आपके शिष्य हर्षकुल रचित गीत के अनुसार आप उदयसिंह की धर्म पत्नी उत्तमदेवी के पुत्र थे। जिनहंससूरि के शिष्य होने के कारण आपकी दीक्षा १५८२ के पूर्व ही संभव है। उस समय १०।१२ वर्ष की आयु रही

---

*किसी पट्टावलि में सं, १५५६ लिखा है सम्भवतः इसका कारण मारवाड़ी गुजराती संवत प्रचलन समय का फेर है।

३ ×दे. ऐ. जैन काव्य संग्रह पृ. ५३.

४ ≠देशाई, वेलणकरादि ने इसका रचनाकाल सं० १५८२ लिखा है पर संभवतः १५७२ होगा। दीपिका की प्रशस्ति में "मुनि शरच्चन्द्रमित वर्षे" पाठ है, संभव है कि मुनिके आगे का द्वि. शब्द छूट गया हो।

हो तो जन्म सं. १५७० के लगभग संभव है। सैद्धान्तिक ज्ञान आपका बहुत बढ़ा चढ़ा था। अपने समय के आप महान् गीतार्थ थे। यु. जिनचन्द्रसूरि आदि भी सैद्धान्तिक विषयों में आप से सलाह लेते थे। सं १६०४ में जिनमाणिक्यसूरिजी के आदेश से रचित सुबाहु सन्धि में आपने उपाध्याय पद का सूचन किया है अतः इससे पूर्व ही जिनमाणिक्यसूरिजी ने आपको उपाध्याय पद प्रदान किया निश्चित है। जिनचन्द्रसूरिजी के समय मे तो तत्काल उपाध्याय पदस्थ मुनियों में सबसे बड़े होने से आप महोपाध्याय पद से प्रसिद्ध हुए। आपकी भाषा बड़ी प्रौढ़ एवं प्राचीनता को लिये हुए थी, अतः आपकी ७ वीं शताब्दि की रचनाओं में भाषा १५-१६ वीं का सा आभास मिलता है। यु. जिनचन्द्रसूरिजी के पौषधप्रकरणवृत्ति का आपने संशोधन किया व उनके आदेश से ही साधुवंदना (गा. ८६) एवं जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति वृत्ति की रचना की।

सं. १६१६ में जेसलमेर में मंत्रि श्रीवंत पुत्र पद्मसिंह ने परिवार सह आपको सदेहविषौषधि पत्र ६८ की प्रति बहराई थी। सं. १६४० में जिन-वल्लभसूरिजी के प्रश्नोत्तरषष्टिशतक काव्य पर वृत्ति *(ग्र. १५००) बनाई एवं सं. १६४५ में जेसलमेर में जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति वृत्ति (ग्र १३२७५) की रचना की। वृद्धावस्था के कारण इन दोनों वृत्तियों की रचना में आपके शिष्य पद्मराज ने सहायता की थी। जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति वृत्ति का प्रथमादर्श आपके प्रशिष्य ज्ञानतिलक ने तैयार किया था। स १६५० में जेसलमेर में जिनकुशलसूरिजी की चरण पादुका की प्रतिष्ठा× की, और सभवतः इसके पश्चात् शीघ्र ही वहीं स्वर्ग सिधारे।

आपकी उल्लेखनीय बड़ी रचनाओं का निर्देश उपर किया जा चुका है. अब स्तवनादि की सूचि दी जा रही है—

१. चौवीस जिन स्तवन (नामकरण गर्भित) गा. २० हमारे संग्रह में
२. ,, ,, ,, (५ कल्याणक गर्भित) गा. २२ प्रकाशित.

***इसकी एक प्रति मुनि विनयसागरजी के संग्रह में है, और उसके प्रकाशन का भी विचार कर रहे हैं।**

×दे. जैसलमेर लेख संग्रह भा. ३ पृष्ठ १२१ लेखांक २४९ ५

३. आदिनाथ स्तवन गा. २६ बीकानेर, प्रकाशित
४. आदिनाथ स्तवन ,, १८ ,,
५. पैंतीस अतिशय गर्भित स्तवन गा २७
६. जिन प्रतिमापूजा स्तोत्र गा. १५ हमारे संग्रह में
७, ८. नेमिस्तवन गा. ५-६,
६. पार्श्व जन्माभिषेक स्तवन गा. १६ जेसलमेर संग्रह में
१०. संखेश्वरपार्श्व स्तवन गा. ५ ११. पार्श्व स्तवन गा. ७
१२. वीर स्तवन. गा. २१, सं. १३. श्री सीमंधर अष्टक संस्कृत गा ८
१४. गौतमगीत गा. ५. १५. मणिधारी जिनचन्द्रसूरि अष्टक गा. ६
१६. नववाड़ ब्रह्मव्रत सज्झाय, गा. २०
१७. चौसरण गीत गा. ६. १८. नमि राजर्षि गीत गा. ५४.
१६. पंच निर्ग्रंथी सज्झाय गा. ८. २०. वैराग्य सज्झाय गा. १२.

उपाध्याय पद्मराज

उ. पद्मराज भी अच्छे विद्वान थे। आपके नामकी दीक्षित राज नंदी पर विचार करने पर आपकी दीक्षा सं. १६२३ के लगभग होनी चाहिए। सं. १६२८ में अहमदाबाद में आपके लिखित धर्मशिक्षा सावचूरि पत्र ३ प्राप्त है। जिसका पुष्पिका लेख इस प्रकार है "लिखिता श्रीपुण्यसागरोपाध्याय मतल्लिकानां पादपद्मचंचरीकेण पं. पद्मराज मुनिना। श्रीअहमदावाद महानगरे। सं. १६२८ वर्षे ज्येष्ट ३ दिने"। धर्मशिक्षा कठिन काव्य है, उसे शुद्ध लिखने के लिये कम से कम १८-२० वर्ष की आयु अपेक्षित है, एवं दीक्षा समय १६२३ में १३ वर्ष के भी हों तो जन्म सं. १६१० के लगभग संभव है सं. १६४०-४५ में स्वगुरु रचित वृत्तियों मे आपके सहाय करने का उल्लेख पूर्व आ ही चुका है। प्रस्तुत ग्रन्थ में प्रकाशित दण्डक वृत्ति सं. १६४३ के (संवत् के उल्लेख वाली) आपकी सर्वप्रथम रचना है, और सं. १६६६ की शेष रचना सनतकुमार रास हैं। किसी भी अन्य कवि के रचित काव्य के १ चरण को लेकर ३ चरण स्वयं बनाकर उसे आत्मसात कर लेना कठिन एवं विद्वत्तापूर्ण कार्य है। प्रस्तुत रचना पद्मराज की विद्वता की परिचायक है। इस ग्रन्थ में

प्रकाशित *दण्डक स्तुति द्वय की टीका की प्रति पद्मराजजी के स्वयं लिखित बीकानेर की राजकीय अनूप संस्कृत लायब्रेरी में प्राप्त हैं। जिसकी प्रतिलिपि करवा के मैंने मुनि विनयसागरजी को प्रकाशनार्थ भेज दी थी। पार्श्व स्तोत्र सावचूरि की प्रेस कापी उपा० सुखसागरजी से प्राप्त हुई थी जिसे मैंने कलकत्ते से मिजवाई थी। अब पद्मराज की समस्त रचनाओं की सूची नीचे दी जा रही है।

१. भुवनहितसरि रचित दण्डक वृत्ति सं. १६४३
२. जिनेश्वरसूरि ,, रुचिर ,, ,, सं. १६४४. फलौदी
३. उवसग्गहर बालावबोध सं. १६४६ जेसलमेर पत्र ५ (डुंगरजी भंडार जैसलमेर)
४. अभयकुमार चौपाई सं. १६५० जेसलमेर
५. भावारिवारणपादपूर्ति स्तव स्वोपज्ञ वृत्ति सं. १६५६ विजयदशमी जेसलमेर (इसी ग्रंथ में प्रकाशित)
६. चौबीशजिन ६ बोल गर्भित स्तवन सं. १६६७., (गा. २७ संग्रह में)
७. क्षुल्लक ऋषि प्रबंध सं १६६७ का. सु ५ मुलतान (गा. १४१, हमारे संग्रह में।
८. सनतकुमार रास सं· १६६९
९. *पार्श्वनाथ लघु स्तवन सावचूरि* (*इसी ग्रन्थ में प्रकाशित*).
१०. शीतलजिन स्तवन गा. ११ ११. वासुपूज्य स्तवन गा. ७
१२. मरोट नेमिनाथ ,, ,, १७ १३. नेमिधमाल ,, ,, ११
१४-१५. नेमि स्तवन ,, ५-५ १६ महावीर स्तवन ,, १५
१७. अष्टापद ,, ,, १४ १८. नवकार छंद ,, ९
१९-२०. गौतमाष्टक गा. ९ गीत गा. ३ २१. जिनवाणी गीत ,, ११

*इनमें से एक प्रस्तुत ग्रन्थ में छपी है, दूसरी 'जिनेश्वर दण्डक स्तुति, द्वय टीकोपेता' नाम से स्वतंत्र पुस्तिका मुनि-विनयसागरजी के सम्पादित शीघ्र ही प्रकाशित होगी।

२२ से २५. जिनचन्द्रसूरिजी गीत गा. १४-७-५-४

२६. सनतकुमार गीत गा २४ २७. भरतचक्री सज्झाय गा. ८

२८. चौदह गुण स्थान स्तवन गा. २१

२९. दशार्णभद्र गीत गा. ६ ३०. बाहुबलि सज्झाय गा. १४

३१. १२ भावनामय पार्श्वस्तव गा. १२ ३२. जंबू गीत ,, ८

३३. वयर स्वामी गीत ,, ३ ३४, पंचेन्द्रिय सज्झाय ,, ५

३५. स्थूलिभद्र गीत ,, ४ ३६. मोहविलास गीत ,, ८

३७ सीमंधर स्तवन ,, १६ ३८. शत्रुंजय स्तवन ,, ७

३९. यमकालंकार शृंखलाबद्ध स्तवन गा. ३६

४०. चतुर्विंशतिजिन स्तवन गा. २५

ज्ञानतिलक

जिस प्रकार विद्वान गुरु के आप विद्वान शिष्य थे, उसी प्रकार आपके भी ज्ञानतिलक नामक सुयोग्य शिष्य थे। सं. १६४५ में रचित जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति वृत्तिका प्रथमादर्श आपने लिखा था, जिसका उल्लेख पूर्व किया जा चुका है। सं. १६६० की दीवाली को आपने गौतम कुलक की विस्तृत टीका बनाई अन्य फुटकर प्राप्त कृतियों में (१) नेमिधमाल गा. ४६, (२) पार्श्वस्तवन गा. ७, (३) नंदीषेण सज्झाय गा. २३, (४) नारी त्याग वैराग्य गीत गा. ११ (५) नेमिनाथ गीत गा. १६ (६) प्रहेलिकाएं आदि हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ में प्रकाशित पार्श्वलघुस्तव अवचूरि की लेखन प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि पद्मराजजी के अन्य शिष्य कल्याण कलश थे, जिनके शि. उपा. आनन्द विजय शि० वाचनाचार्य सुखहर्ष शि० नयविमल के सतीर्थ भुवननंदन सं. १७४१ तक विद्यमान थे। प्रमाणाभाव से इसके आगे कब तक आपकी परंपरा विद्यमान रही, नहीं कहा जा सकता।

दीपमालिका सं० २००४ **अगरचंद नाहटा**

बीकानेर

॥ श्रीगौतमाय नमः ॥

महामहोपाध्याय श्रीमत्पुण्यसागरगणि विपश्चि-
च्छिष्यरत्न आशुकवि श्रीमत्पद्मराज गणि
गुम्फितं-स्वोपज्ञवृत्त्या चालंकृतम्
भावारिवारणांत्यपादसमस्यामयं
❀ समसंस्कृतस्तवनम् ❀

(वृत्तिकार मंगलाचरणम्)

श्रीवर्द्धमानमभिनम्य जिनं समस्या-
स्तोत्रं निजस्मृति कृते विवृणोमि किंचित् ।
भावारिवारणवरस्तवतुर्यपाद-
बद्धं परोपकृतये समसंस्कृतं च ॥ १ ॥

वन्दे महोदयरमारमणीललामं ,
कामं महामहिमधामविलासधामम् ।
वीरं भवारिभयदावकरालकीला-
संभार-संहरण तुंगतरङ्गतोयम् ॥ १ ॥

वन्दे इत्यादि । अहं वीरं-वर्द्धमानजिनं वन्दे-स्तवीमीति सम्बन्धः । वदि अभिवादन स्तुत्योरिति वचनात् अत्र स्तुत्यर्थे प्रयुक्तः । किंविशिष्टं वीरं ? महोदयरमा-मोक्षश्रीः सैव रमणी-ललना तस्या ललामं-इवललामं तिलकं काम-मत्यर्थं, तथा महां-आसौमहिमा च महामहिमाधामतेजस्ततोद्वंद्वे महामहिमधामनी तयो र्विलासधामं-लीलागृहम् महामहिमधामविलासधामं, धाम शब्दोऽकारांतोऽपि गृहवाची । तथा भवः-संसारः स एव दुःख दायकत्वादरिः वैरीभवारिस्तस्ययद्भयं तदेव परितापहेतुत्वाद्दा-वोदवाग्निस्तस्ययः करालो रौद्रः कीलासंभारोज्वालासमूह स्त-

स्य संहरणं-निराकरणं तत्र तुंगतरंगं-उच्चकल्लोलं यत्तोयं तदिव यः स तं, भवारिभयद्रावकरालकीला संभार संहरण तुंगतरंगतोयम् ॥ इति प्रथमवृत्तार्थः ॥१॥

अथ प्रभोः सर्वगुणोत्कीर्त्तने सुरादीनामशक्तिं संभाव्य-स्वगर्वं परिहरन्नाह —

देवानरा विमल बुद्धिगुणाहिनाव-
गच्छन्ति देव ! निखिलं गुण संचयन्ते ।
मंतुं न तं सममलं जडपुंगवोह-
मुंञ्छामि किन्तु तव देव ! गुणाणुमेव ॥ २ ॥

देवा-इत्यादि । देवाः-सुरा नरा-मनुष्या उभयेऽपि कीदृशाः- विमलबुद्धिगुणा निर्मलमतिमंतो हि-निश्चयेन न अवगच्छंति-न जानन्ति । हे देव ! निखिलं-समग्रं गुण संचयं-गुणवृन्दं ते-तव । अतो मंतुं-ज्ञातुं न नैव तं त्वद्गुणसंचयं समं सर्वमित्योक्तौ प्रयुज्यमानत्वान्न पौनरुक्त्यं । अथवा समं सप्रमाणं कतिपयं अलं समर्थो जडपुंगवो-महामूर्खोऽहमित्यात्मनिर्देशे । ततः किंकरोमीत्याह-किंतु तथाप्यर्थे हे देव ! तव गुणाणुमेव-ज्ञानादिगुणलेशमेव उञ्छामि गृहीतधान्यावशिष्टकणादानमिव स्तोकं २ गृह्णामीत्यर्थः ॥ २ ॥

अथगुणलवग्रहणमेव सकलेऽपि स्तोत्रे प्रादुर्भावयिष्य-न्नाह —

हे वीरहीरसुरसिंधुरसिद्धसिन्धु-
डिंडीर-पिण्डधवला गुणश्रेणी ते ।
गोविंदवारिरुहसंभववामदेव-
मायाविदेव निवहे न मलीमसा वा ॥ ३ ॥

हे वीरेत्यादि । हे वीर ! वर्द्धमान स्वामिन् ते तव गुणधोरणी-गुणानां ज्ञानादीनां रूपसौभाग्यादीनां वा धोरणी-श्रेणिर्गुणधोरणी शोभत इति शेषः। कथंभूता गुणधोरणी ? हीरोवज्रमणिः सुरसिन्धुर ऐरावणः सिद्धसिंधुर्गंगा तस्या डिंडीरपिंडः फेनपुंजः सिद्धसिंधुडिंडीरपिंडस्ततो द्वन्द्वे, हीरसुरसिंधुरसिद्धसिंधु डिंडीरपिण्डास्ते इव धवला शुभ्रा या सा तथा ईदृशी गुणावली किमन्यत्राप्यस्तीत्यत आह–गोविन्दो-विष्णुर्वारिरुहसंभवोब्रह्मावामदेवः-शिवः एषां द्वन्द्वे, ते च ते देवलक्षणरहितत्वात् मायाविदेवाश्च । गोविन्द-वारिरुह-संभव-वामदेव मायाविदेवास्तेषां निवहः समूहः स तथा तत्र सा गुणावली न नैवास्तीत्यर्थः। वा अथवा चेदस्ति तदा मलीमसा मलीनामषी श्यामेत्यर्थः। इयता देवान्तरेषु दोषा एवोक्ता भवंतीति. यतो दोषान् श्यामान् गुणान् शुभ्रान् वर्णयेदिति, को विस्मयः ? ततो गुणाधिक्यात् प्रभुरेव सेव्य इत्यर्थः ॥ ३ ॥

निस्संगरंग ! तव संगममन्तरेण,
चिन्तामणी सुरगवी करणिं चिरेण ।
नारायणं च मिहिरं च हरं महन्तो,
विंदन्ति जंतु निवहा न हि सिद्धभावं ॥ ४ ॥

निस्संगेत्यादि । संगः स्वजनादि संबन्धो रंगो विषयादिषु रागः ततो द्वन्द्वे, संगरंगौ ताभ्यां निर्गतो निस्संगरंगस्तत् संबोधनं, हे निस्संगरंग ! हे स्वामिन् तवसंगमं मिलनमन्तरेण विना जंतुनिवहाः प्राणिगणाः सिद्धभावं सिद्धत्वं सिद्धिमित्यर्थः । चिरेण-चिरकालेनाऽपि न हि नैवविन्दंति लभन्ते इति सम्बन्धः । किंभूतं संगमं ? चिन्तामणी सुरगवीकरणिं मनोवांच्छितसिद्धिदायकत्वात् सुरमणी कामधेनु सदृशं । किंकुर्वन्तो जंतुनिवहाः नारायणं-विष्णुं-मिहिरं-सूर्यं च शम्भो समु-

भव्ये हरं-महेश्वरं महंतः पूजयन्तः ॥ ४ ॥

अथैकवाक्योक्त्या काव्यद्वयेन प्रभुंस्तौति –

छिन्नामयं परमसिद्धिपुरेवसन्त-
मुल्लासिवासरमणिं महसा हसंतम् ।
मायातमो निलयसंगममूढदेवा,
हंकारकंदलदली करणासिदंडं ॥ ५ ॥
देवं दया कमलकेलिमरालबालं,
धीमन्दिरं सरसवाणि रमारसालम् ।
चित्तेवहामि वरसिद्धि-रसाल कीरं,
संसारसागरतरी करणिं च वीरम् ॥ ६ ॥

छिन्नेत्यादि । देवमित्यादि । अहं वीरं देवं चित्ते वहामि-ध्यायामीत्यर्थः । इति क्रियाकारक सम्बन्धः । किंभूतं वीरं? छिन्नामयं-निराकृतरोगं परममविनश्वरत्वादुत्कृष्टं यत्सिद्धिपुरं परमसिद्धिपुरं तत्र वसंतं-तिष्ठन्तं । उल्लासी चासौ वासरमणिश्चउल्लासिवासरमणिः स्तं देदीप्यमान सूर्यं महसा-तेजसा हसन्तं जयन्तमित्यर्थः। मायानिकृतिः तमः पापं ततो द्वन्द्वे, मायातमसी, अथवा मायैवतमोध्वान्तं मायातमस्तयोस्तस्य, वा निलय-आश्रयो माया-तमोनिलयः स चासौ संगममूढदेवश्च संगमाभिधमूढसुरो-मायातमोनिलयसंगममूढदेवस्तस्य योऽहंकारोऽहं प्रभुं क्षोभयिष्यामीति गर्वः स एव मनोभूमिजातत्वात् कंदलं नवोत्थितो वनस्पत्यवयवस्तस्य दलीकरणं-छेदनं तत्राऽसिदंड इवाऽसिदण्डः खङ्गपात इत्यर्थस्तं ॥ ५ ॥

तथा देवं दीव्यति क्रीडति परमानन्दपदे इति देवस्तं, दयैव कमलं पद्मं तत्र या केलिः क्रीडा तया मरालबाल इव

मराळबालो-हंसशिशुस्तं । धीमंदिरं-बुद्धिसदनं सरसा या वाणीरमा-वाग्लक्ष्मीः सरसवाणिरमा तथा रसाल इव-रसाल इवुः स तं सरसवाणिरमारसालं । चित्ते वहामीति प्राग्योजित-मेव । वरसिद्धिरेव-प्रधानमुक्तिरेव रसालः-सहकारस्तत्र कीर इव कीरः-शुकस्तं, वरसिद्धिरसालकीरं । संसार एव दुरुत्तरत्वात् सागर संसारसागरस्तत्र परपारप्रापणसाधर्म्यात्तरीकरणिनौ सदृशस्तं । चकारो विशेषणसमुच्चये, वीरं-चरमजिनं ॥ ६ ॥

अथ विकारहेतुसद्भावेऽपि प्रभुचेतसो निश्चलत्वं काव्य-त्रयेणाह—

रम्भावभासि करिणीकरपीवरोरु-
संरंभमुच्चकुचकुम्भभरेण मन्दम् ।
अंगं मरंग-परिरंभ-कलासु धीरं,
मंजीरचारुचरणं सरसं वहन्ती ॥७॥
लीलाविलासपरिहासतरंगवेणी,
रोलंबपुञ्जकलकज्जलमञ्जुवेणी ।
छायावहा कुसुमबाणपुलिन्दपल्ली,
भल्लीव विद्धबहुकामिकुरंगसंघा ॥८॥
पंकेरुहारुणकराकलकंठरामा-
वामारवा तरुणचित्तकरेणुरेवा ।
नारी विभासुर ! सुरासुरसुंदरी वा,
नालं निहंतु मिह ते विमलाभिसन्धिम् ॥९॥

त्रिभिःकुलकं

रम्भेत्यादि । लीलेत्यादि । पंकेत्यादि । हे विभासुर ! कान्त्या दीप्यमान देव ! तव विमलाभिसन्धिं-निर्मलचित्त-

भावे, निह्नुं अन्यथाकर्तुं । नारी-मानुषी वा-अथवा सुरासुरसुन्दरी-देवासुररमणी नाऽलं न समर्थेति । तृतीयवृत्तस्य द्वितीयार्द्धे वोक्ति युक्तिः । किंभूता नारी ? देवी वा ? अंगं - देहं वहंती—बिभ्रती । किंभूतं अंगं ? रम्भावभासी-कोमलत्वात् कदलीस्तम्भविभ्राजी करिणीकरपीवरो मांसलत्वात्-हस्तिनीशुण्डावत्पीनः । ततः कर्मधारयः । ईदृशः ऊरुसंरंभः-सच्छ्रयाटोपो यत्र तत् । तथा उन्नकुचकुम्भभरेण-उन्नतस्तनकलशभारेण मन्दं-मन्थरं सरंगा-सहर्षा याः । परिरंभकला-आलिंगनकला अष्टविधा वात्स्यायनकोकशास्त्रप्रसिद्धास्तास्तासु सरंगपरिरंभकलासु धीरं-निश्चलं दक्षं वा । मंजीरे-नूपुरे, ताभ्यां चारू मनोहरौ चरणौ यस्मिस्तत्, सरसं-शृंगारादिरसोपेतं, एतादृशं अंगं वहंती ॥ ७ ॥ पुनर्नारीदेव्योर्विशेषणान्याह—लीला-क्रीडा विलासो-नेत्रचेष्टा परिहासो—नर्म, ततो द्वंद्वे, त एव तरंगाः-जनमनःक्षोभहेतुत्वात् कल्लोलास्तेषां वेणीव वेणी जलप्रवाहः सा तथा। रोलंबपुञ्जो-भ्रमरोत्करः-कलकज्जलंप्रधानाञ्जनं ततो द्वंद्वे, रोलंबपुञ्जकलकज्जले तद्वन्मंजू-रम्या वेणीकेशबन्धविशेषो यस्याः सा, वेणी सेतुप्रवाहयोः देवताडे केशबन्धे इति हैमानेकार्थे । छायावहा-शोभायुक्ता, कुसुमबाणःकामः स एव पुलिंदो-भिल्लस्तस्य पल्लीव पल्ली, तदाश्रयभूतत्वात् कुसुमबाणपुलिंदपल्ली, पुलिंदशब्दो भिल्लवाची औणादिकः ' कलिपुलिकुरिकणिमणीभ्य इंदक्' इति हैमोणादौ। तथा भल्लीव-इव शब्दस्यतुल्यार्थवाचकत्वात् प्रहरणविशेषतुल्येत्यर्थः । कुत इत्याह—यतो विद्धबहुकामिकुरंगसंघा विद्धास्तीक्ष्णकटाक्षक्षेपैर्णांतर्भेदितो बहुकामिनश्चटुलस्वभावत्वात् कुरंगसंघो हरिणयूथं यया सा तथा ॥ ८ ॥ पंकेरुहं-कमलं तद्वद्रुणौ-आरक्तौ करौ-पाणी यस्याः सा तथा कलकंठरामा-

कोकिला मदारवबहामो-मनोहर आरवः-शब्दो यस्याः सा तथा। 'शाकपार्थिवादित्वात्' मध्यमपदारवशब्दस्य लोपः। तरुणा-युवानस्तेषां चित्तानि-मनांसि, तान्येव मदनमदोन्मत्तत्वसाधर्म्यात् करेणवो-गजास्तेषां आह्लादहेतुत्वाद्रेवेव रेवा-नर्मदा तरुणचित्तकरेणुरेवा। नारी-स्त्री हे विभासुर! - दीप्र! सुरासुरसुन्दरी सामान्येन देवांगना वा 'जातिनिर्देशादेकवचनं' ते-तव विमलाभिसंधि विमलो-विकारकारणसद्भावेऽपि विकारमलरहितो योऽभिसंधिश्चित्तभावस्तं। अथवा विमलेति भगवतः सम्बोधनं। किमित्याह—निहंतु पातयितुमन्यथाकर्तुमिति यावत् इह जगति नाऽलं न समर्थाभूदिति काव्यत्रयार्थः ॥७-८-९॥ त्रिभिःकुलकमित्येकवाक्येनैव काव्यत्रयोपनिबन्धज्ञापकमित्यर्थः ॥

अंहोमयं निविडसंतमसं हरन्ती,
सन्देहकीलनिवहं समसुद्धरन्ती।
हिंसानिबद्धसमयानयधीदुरूह-
सम्बन्धबुद्धिहरणी तव देव! वाणी ॥१०॥

अंहोमयेत्यादि। अंहोमयं-पापरूपं निविडसंतमसं-सान्द्रान्धकारं हरन्ती-नाशयन्ती। संदेहा एव मनःशल्यतुल्यताधायित्वात् कीलाः शंकवस्तेषां निवहः-समूहस्तं संदेहकीलनिवहं समं-सर्वं समकालमेव वा उद्धरंती-उत्खनन्ती। एकवचसैव भगवतः सर्वसंदेहसंदोहापोहात्। हिंसानिबद्धाः-प्राणिवधोक्तियुक्ता ये समयाः सिद्धान्ताः पापश्रुतानि, अनयधियः- अन्यायबुद्धयो दुरूहा-दुर्वितर्कास्ततो द्वन्द्वस्तेषु या संबंधबुद्धिरभिनिवेशात्स्यात्सक्तिस्तस्या हरणी, तन्निवारिणीत्यर्थः। ईदृशी हे देव! तव वाणी-वाङ्मम प्रमाणमिति गम्यते

इत्यर्थः ॥१०॥

गम्भीरिमालयमहापरिमाणमंग,
सम्बद्धभंगलहरीबहुभंगिचंगम् ।
नीरालयं नयमणीकुलसंकुलं वा,
देवागमं तव नरा विरला महन्ति ॥११॥

गंभीरिमेत्यादि । गंभीरिमा गांभीर्यं तस्य आलयो गंभीरिमालयो महत्परिमाणं-प्रमाणं यस्य स महापरिमाणस्ततः कर्मधारयस्तं गंभीरिमालयमहापरिमाणं अथवा गंभीरिमाल येति भवगतः संबोधनं । तथा अंगेषु-आचारादिषु संबद्धाः-प्रतिपादिता ये भंगा-भंगकास्त एव लहर्योऽतिगहनसंख्य-त्वात् कल्लोलास्तासां बहुभंगयो-बहुविच्छित्तयोऽवान्तरभेद-रूपास्ताभिश्चंगो-मनोहरस्तं । 'नीरालयं नयमणीकुलसंकुलं वा' अत्र पादान्तस्थो वा शब्द इवार्थे । स च नीरालयमित्य-स्याग्रे योज्यस्ततश्च नीरालयं वा-समुद्रमिव । नया एव चतुर-परिच्छेद्यत्वान्मणीकुलानि-रत्नसमूहास्तैः संकुलो-व्याप्तः स तथा तं । हे देव! तवागमं-द्वादशांगाख्यं प्रवचनं नरा-भव्यपुरुषाः विरलाः-केचिदेवासन्नसिद्धिका महंति-द्रव्यतो भावतश्चाभ्यर्च-यन्ति । अत्र भगवदागमः सागरोपमया वर्णितः सागरोऽपि गांभीर्याश्रयो महाप्रमाणः कल्लोलरम्यो रत्नपूर्णश्च भवतीत्यु-पमाश्लेषः ॥११॥

मेरीरणं दिवि सुदायगिरं भणन्तो,
देवा वहन्ति तव पारणदायिगेहे ।
धाराचयं वसुमयं च सचेलचालं,
मंदारकुन्दकवरं कुसुमं किरंति ॥१२॥

मेरीत्यादि । मेरीरणं-दुंदुभिनादं दिवि-गगने सुदाय-

गिरं सुदानगिरं अहो सुदानं २ इति रूपां वाचं भणंत उद्घोषयन्तो देवा वहंति प्रापयन्ति कुर्वन्तीत्यर्थः। क? भवपारणदायिगेहे-प्रथमादि पारणदातृगृहे एकवचनं जात्यपेक्षया, तथा धाराचयं धारासमूहं वसुमयं द्रव्यमयं वसुधारावर्षणरूपमित्यर्थः । च शब्दः पुनरर्थे स चाग्रेयोक्ष्यते सचेलचालं सचेलोत्क्षेपं यथा स्यात्तथा, मंदाराणि कल्पवृक्ष प्रसूनानि कुंदानि प्रसिद्धानि तत एषां द्वन्द्वे, मन्दार कुन्दानि तैः कबरं मिश्रं मन्दारकुन्दकबरं कुसुमं च पंचवर्णं 'पुष्पमेकवचनं जात्यपेक्षया' किरंति विक्षिपंति सर्वतो विस्तारयन्ति पुष्पवृष्टिं कुर्वन्तीत्यर्थः॥ अत्र काव्ये भगवतः पारणदाय दानेन सद्मसु देवाः पंचदिव्यानि प्रकटयन्तीति निवेदितं ॥१२॥

उद्दंड चण्ड करणोरुतुरंगवार-
मुद्दाम तामस करेणु बलं च वीरम् ।
संमोह भूरमण भूरि बलं दलंत-
मुत्तुंगमारकारि केसरिणं नमामि ॥१३॥

उद्दंडेत्यादि । अहं वीरं वर्द्धमानस्वामिनं नमामि नमस्करोमीत्युक्ति योजना। किंभूतं वीरं ? उद्दंडचंडानिदुर्जेयत्वादतिदृढानि यानि करणानि-इन्द्रियाणि तान्येवातिचपलत्वादुरवो गरिष्ठास्तुरंग वारा अश्वसमूहा यत्र तत्तथा, उद्दंडचंडकरणोरुतुरंगवारं। तथा उद्दामंदुर्निवारं यत्तामसं पापपटलं तदेव परविशं स्थूलता हेतुत्वात् करेणु बलं हस्ति सामर्थ्यं यस्य यत्र वा तत्तथा, उद्दामतामसकरेणु बलं । च समुच्चये, ईदृशं संमोह भूरमण भूरिबलं दलंतं संहरंतं संमोह एव सर्वकर्मसु दुर्जेयत्वादिना मुख्यत्वाद्भूरमणो राजा तस्य यद्भूरि प्रचुरं बलं सैन्यं तत्प्रकृति समुदायरूपं तत्तथा, संमोहभूरमण भूरिबलं ।

कथम्भूतं वीरं ? उत्तुंगमारः-प्रचण्डस्मरः स एव दुर्धर्षस्वभाव-त्वात् करी हस्ती तत्र केसरीव केसरीसिंहस्तं । ईदृशं वीरं नमामि ॥१३॥

वंदारु चारु सुर किन्नर सन्निकायं,
विच्छिन्न भीमभय कारण संपरायम् ।
निस्सीम केवलकला-कमला-सहायं,
वीरं नमामि नव हेम समिद्धकायम् ॥१४॥

वन्दारु इत्यादि । वन्दारवः सानन्दं प्रणमनपराश्चारवो रम्याः सुराणां देवानां किन्नराणां व्यन्तर-विशेषाणां सन्निकायाः संगत समूहा यस्य स तं, विच्छिन्नाः समूल मुन्मूलिता भीमभयकारणानि संपरायाः कषाया येन स तथा तं, । संप-राय शब्दः कषायवाची जैनागम प्रसिद्धो यद्वशात् सूक्ष्मसं-परायं चारित्रं सूक्ष्मसंपरायं गुणस्थानमागमे गीयते । अथवा अपास्त भीमभयहेतु संग्रामं निस्सीमा-अपरिमिता या केवल-कला केवलज्ञान चातुरी सैव कमलालक्ष्मीः सा सहायो यस्य स तं । एवं विधं वीरं वर्द्धमानजिनं नमामि नमस्करोमि । नवहे-मवत् नव्यकांचनवत् समिद्धो दीप्तिमान् कायो यस्य स तं ॥१४॥

आरामधाम गिरि मंदर कंदरासु,
गायन्ति भूमिवलये गुणमंडलं ते ।
नारी नरा सुरवरा अमरा अमंद,
संदेह रेणु हरणोरु समीर वीर ! ॥१५॥

आरामेत्यादि । हे वीर ! नारी नरा सुरवरास्तथा अम-रास्ते तव गुणमण्डलं गुणगणं गायन्तीत्युक्ति युक्तिः । कुत्र [illegible]-आरामा नन्दनादि वनानि धामानि भवन विमाना-

दीनि स्थानानि। गिरयो वर्षधराद्याः शैलाः मंदरोमेरुः कंदराः गुहास्ततो द्वन्द्वस्तासु आरामधामगिरिमंदरकंदरासु। पुनः क? भूमिवलये पृथ्वीमण्डले नार्यश्च नराश्च असुरवराश्च नारीनरासुरवराः तथा अमराः सुराः अमंदेति प्रभोः संबोधनं। हे अमंद! सभाग्य "मंदो मूढे शनौ रोगिण्यलसे भाग्यवर्जिते। गज जाति प्रभेदेल्पे स्वैरे मंदरतेखले॥" इति हैमानेकार्थोक्तेः अथवा अमंदा बहवो ये संदेहाः संशयास्तएव कालुष्यापादकत्वाद्रेणवस्तेषां हरणे उरूः प्रचण्डः समीरोवायुस्तत्संबोधनं हे अमन्द! संदेहरेणु हरणोरु समीर वीरेति प्रत्यसंबद्धं ॥१५॥

संसारि काम परिपूरण कामकुम्भं,
संचारि हेमनवकंज परंपरासु।
सेवामि ते चरमदेव! समंतसेवि,
संघावली दमिगणं चरणं चरन्तम् ॥ १६ ॥

संसारीत्यादि। हे चरमदेव! अंतिमजिनवर्द्धमान स्वामिन् ते-तव चरणयुगमं 'जात्यपेक्षायामेकवचनं' अहं सेवामि प्रणामादिना श्रयामि सेवामीति परस्मैपदं, आत्मनेपदमनित्यमित्युक्तेरदुष्टं। कथंभूतं चरणं? संसारिणो जीवास्तेषां कामपरिपूरणे- मनोवांछितदाने काम कुंभ इव कामकुम्भस्तं। पुनः कथंभूतं? संचारीणि चरिष्णूनि देवैः संचार्यमणानि यानि हेमनवकंजानि स्वर्णमयनवसंख्यकमलानि 'कञ्जं पीयूषपद्मयोरिति हैमानेकार्थोक्तेः।' ततः कर्मधारये तानि तेषां परंपराः पंक्तयस्तासु, संचारिहेमनवकंजपरंपरासु। चरंतं गमनं कुर्वन्तं। पुनः किं० चरणं? समंतसेवि संघावली चतुर्वर्णसंघ श्रेणिः दमिगणः साधुसमूहस्ततो द्वन्द्वे संघावली दमिगणौ समंतं समीपं सेवत इति समंतसेविनौ संघावलीदमिगणौ यस्य यत्र वा तं समंतसेवि संघावली दमिगणं साधुगणस्य संघांतर्गत-

त्वेऽपि यत्पार्थक्येनोपादानं तत्तस्य प्राधान्यख्यापनार्थमिति ॥ १६ ॥

सन्नद्ध धीरवर वीर सवेग-बाण,
छायानिरुद्ध तरुणारुण चंडबिंबे ।
संपन्न घोरतुमुले गुरु भीरुकम्पे,
कंकाल संकुल भयावह भूमि भागे ॥ १७ ॥
भल्लासि भिन्न हय वारण वारबाण,
साडंबरारिकरणा-वरणे दुरंते ।
चित्ते चिराय तव नाम वरं वहन्तो,
वीरं नरा रणभरेरि बलं जयन्ति ॥ १८ ॥ युगलकं ।

सन्नद्धेत्यादि । भल्लेत्यादि । अत्र काव्यद्वयेन संबन्धः । पूर्वं संग्रामविशेषणानि वाच्यानि । ततोरिपुपराजयो वाच्यः । सन्नद्धाः कवचादिमंतो धीरा अभीरवो वरा युद्ध कुशला एषां द्वन्द्वे सन्नद्धधीरवराः ये वीराः सुभटाः प्रतिभटास्तेषां सवेगा महाप्राण मुक्तत्वेन वेगवन्तो ये बाणास्तेषां छायाः श्रेण्यः । 'छायापंक्तौ प्रतिमायामर्कयोषित्यनातपे । उत्कोचे पालने कांतौ शोभायां च तमस्यपि ॥ इति हैमानेकार्थोक्तेः । ताभिर्निरुद्धं आच्छादितं तरुणारुणस्य तरुणार्कस्य चण्डं मंडलं बिंबं यत्र स तस्मिन् । संपन्नोजातो घोरो रौद्रस्तुमुलो व्याकुलो ध्वनि र्यत्र स तथा तस्मिन् । गुरुर्महान् भीरूणां कातराणां कंपो वेपथुर्यस्मात् स तथा तस्मिन् । कंकाल संकुलोऽस्थिपिञ्जरव्याप्तोऽत एवभयावहो भयंकरोभूमिभागो रणक्षेत्रं यत्र स तथा तस्मिन् ॥ १७ ॥ 'भल्लं भल्लूकबाणयोरिति अनेकार्थोक्तेः । भल्ला बाणा लोकोक्त्या कुंता वा असयः खड्गास्ततो द्वन्द्वे ते तथा तै र्भिन्नानि विदारितानि, हया अश्वा वारणा गजावारबाणाः कंचुकाः

साडंबरारीणां ससंरंभं रिपूणां करणानि शरीराणि आवरणानि खेटकादीनि ततो द्वन्द्वे तानि यत्र स तथा तस्मिन् । दुरंते दुरवगाहे एवंविधे रणभरे संग्रामपूरे हे स्वामिन् ! तव नाम वीरेत्यभिधानं वरं-प्रशस्यं चित्ते-मनसि चिराय-चिरकालं वहंतो ध्यानैकतानतया स्मरन्तो नराः शूरपुरुषा वीरं रण-निपुणं अरिबलं विपक्षसैन्यं जयन्ति पराभवन्ति-पराङ्मुखी कुर्वन्तीति । तदिदमापन्नं यदैहलौकिकजयार्थिनाऽपि भगवन्ना-मैव ध्येयमिति । काव्य युगलकार्थः ॥ १७-१८ ॥

संवित्ति वित्त करुणारस वारिकुण्डं,
पीडाहरं गुण-समूहमणीकरंडम् ।
संसार सिंधुजल कुम्भभवं भवन्तं,
सेवंतिकेन भगवंत-मघं हरन्तम् ॥ १९ ॥

संवित्तीत्यादि । संवित्तिः शेमुषीज्ञानमित्यर्थस्तया वित्तः प्रसिद्धः स तथा, तस्यामंत्रणं हे संवित्तिवित्त ! हे प्रभो भवंतं त्वां के जना न सेवन्ति अपितु सर्वेऽपि सेवन्ति । किंभूतं करुणारसः कृपारसः स एव सर्वप्राणिजीवनत्वाद्वारिजलं तस्य कुण्डमिव कुण्डं करुणारसवारिकुण्डं, पीडाहरं व्यथावारकं गुण समूहमणीकरंडं गुणगणरत्नभाजनं संसारएवापारत्वात् सिन्धुः समुद्रस्तस्य जलं तत्र कुंभभवोऽगस्तयस्तं । भगवन्तं ज्ञानादिगुणसमृद्धं अघं-पापं हरन्तं-स्फेटयन्तं ॥ १९ ॥

संचारभूचरण-केवल-सिद्धिवास,
संवासवासर वरा इह वीरदेव ! ।
देवा सुरोरगकुमार सहेल भूमी,
चारेण ते परम मुद्भव मावहन्ति ॥ २० ॥

संचारेत्यादि । संचारो देवानन्दायास्त्रिशलायाश्च गर्भे-

वतारो भूर्जन्मचरणं व्रतग्रहणं केवलं-केवलज्ञानं सिद्धिवासे सिद्धिसौधे संवासोऽवस्थानं ततो द्वन्द्वे, ते तथा तेषां वासरवरा-दिनप्रवरास्ते संचारभूव्रण-केवलसिद्धिवास-संवास-वासरवरा इह जगति। हे वीरदेव ! देवा वैमानिक-ज्योतिष्का असुरा-असुरकुमारा-उरगकुमारा-नागकुमारास्ततोद्वन्द्वे, ते तथा तेषां सहेलं सविलासं यो भूमीचारो भगवज्जन्म स्थानादौ आगमनं स तेन देवासुरोरगकुमारसहेलभूमीचारेण, ते-तव परममुत्कृष्टमुद्भवमुत्सव मावहंति-प्रापयन्ति। अनेन तव जन्मादिकल्याणकदिनेषु देवादय इहागत्य महोत्सवं विदधतीति ज्ञापितमिति भावः ॥ २० ॥

हे वीर ! मेरुगिरिधीर ! वसुंधरालं-
काराभतारवसुभूरिमयोरुसाल ।
आरोहि मंगलमहीरुहकंदमिव,
संसारचार जय जीव समूह बंधो ! ॥ २१ ॥

हे वीरेत्यादि। हे वीर ! चरमजिन त्वं जय जयवान् भव इत्युक्ति युक्तिः। अथ सर्वाणि संबोधनांतानि विशेषणान्याह-हे मेरुगिरिधीर ! वसुंधराया भूमेरलंकाराभ आभरणसमः तार-तारं रूप्यं वसु-वसुरत्नं-भूरिमयो-भुरिस्वर्णं रजतं रत्नं हेममय उरुर्विशालःसालः प्राकारोयस्य स तत्संबोधनं वसुंधरालंकाराभतारवसुभूरिमयोरुसाल। आरोहि समुच्छ्रायवत् अत्युन्नतिमत् यन्मंगलं तदेव महीरुहस्तस्य कंद इव कंदस्तत्संबोधनं आरोहि मंगलमहीरुहकंद। अथवा आरोहि मंगलमहीरुहे कंदो मेघस्तद्रामंत्रणं। भिन्नोध्वस्तः संसारचारो भवकारागारं भवावर्त्तो वा येन स ततः संबोधनं। जीवसमूहस्य बंधुरिव बंधुस्तत्संबोधनं हे जीवसमूहबंधो ! ॥ २१ ॥

धीरोह भूरुहचली-करणे धुरीणा,
दूरं तमो विसररेणु विसारिणो मे ।
बाला समीरण रया इव तूल पूलं,
चित्तं हरन्ति भण किंकर वाणि देव ॥ २२ ॥

धीरोहेत्यादि । धीराणां-पण्डितानां य ऊहो वितर्क-स्तत्वातत्त्वविचारः स एव भूरुहो वृक्षस्तस्य चलीकरणं चापल्यापादनं तत्र धुरीणा अग्रेसराः दूरमत्यर्थं तमो विसर एव अज्ञानपटलमेव रेणु-धूलिस्तस्य विसारिणो-विस्तारिणः तमोविसररेणुविसारिणः । एवंविधा बालाः स्त्रियस्ता एव चापल्यापादनमस्थैर्यकरण साधर्म्यात् समीरणरयाः पवनपूराः, बालाः समीरणरया मे-मम चित्तं तूलपूलमिव-अर्कतूलपुञ्जमिव हरन्ति । ललितलीला कटाक्षक्षेपादिभिर्ध्यानात् मोहत्वद्ध्यानादन्यतो नयन्ति । ततो भण-ब्रूहि-किं शब्दः प्रश्नार्थस्ततः किंकरवाणि किंकरवै । हे देव ! आदेशं देहीति भावः यथा त्वदादेशेन दृढमना भवामीति ॥२२॥

इच्छा जले कलिमलाविलचित्तकच्छे,
रूढं विरुद्धरस भावफलावलीढम् ।
आरंभदंभचिरसंभव-वल्लिजालं,
हे वीर सिन्धुर ! समुद्धर मे समूलं ॥ २३ ॥

इच्छेत्यादि । इच्छा-स्त्रीधनाद्याकांक्षा सैव आरंभदंभवल्ल्युत्पत्ति हेतुत्वाज्जलं यत्र स तत्र । कलिः-कलहो मलं-पापं ततो द्वन्द्वस्ते, तथा ताभ्यामाविलं-मलिनं यच्चित्तं तदेव कच्छः-सरसप्रदेशः स तत्र, 'कच्छोऽम्बुभेदे नौकाङ्गेऽनूपप्रायतटेऽपि च'। इति हैमानेकार्थोक्तेः । कलिमलाविलचित्त कच्छे रूढं-समुत्पन्नं तत्तथा । विरुद्धरसानि यानि भावफलानि नरकतिर्यगादिरूपाणि तैरवलीढं-व्याप्तं तत्तथा । एवंविधं मे-मम आरंभो

जीवोपमर्दः दंभः-कपटं ततो द्वन्द्वस्तावेव चिरसंभवं-चिरकालीनं वल्लिजालं-लतावितानस्तत्तथा, आरंभदंभचिरसंभव वल्लिजालं। हे वीरसिन्धुर! वर्द्धमान गजेन्द्र-समूलं समुद्धर मूलतोप्युत्पाटय यथाऽहं लब्धात्मलाभः सन्परमंसुखमनुभवामीत्यर्थः ॥ २३ ॥

सेवापरायण नरामरतारचूडा—
लंकारसार करमंजरि पिंजराय।
वीराय जंगम सुरागम संगमाय,
कामं नमोऽसम-दया-दम-सत्तमाय ॥ २४ ॥

सेवेत्यादि। सेवापरायणा-भक्तिकरणप्रवणा ये नरामरा नरसुरास्तेषां तारा-दीप्रा ये चूडालंकारा-शिरोभूषणानि तेषां सारा-उत्कृष्टा ये कराः किरणास्तएव प्रसरणशीलत्वान्मंजरयो मंजर्यस्ताभिः पिंजर इव पिंजरः पीतरक्तः स तस्मै वीराय वर्द्धमानाय काममत्यर्थं नमः-नमस्कारोऽस्तु इत्युक्तियोगः। पुनः कथंभूताय वीराय? जंगमश्चरिष्णु र्यः सुरागमः सुराणां अगमोवृक्षः, सुरागमः सुरतरुस्तद्वन्मनोवांछितपूरकत्वात् संगमः प्राप्तिर्यस्य स तथा तस्मै। असमौ-अतुल्यौ यौ दयादमौ कृपेन्द्रियजयौ ताभ्यां सत्तमः श्रेष्ठः स तस्मै ॥ २४ ॥

हे देव! ते चरणवारिरुहं तरंड—
मारोहिणो दरभरं हर देहि देहि।
पारं परं भवदुरुत्तर नीरपूरे,
भूयोसमं-जस निरंतर चारिणो मे ॥ २५ ॥

हे देवेत्यादि। हे देव! देवार्य ते तव चरण-वारिरुहं-पद्मपद्मं तरंडं-तरकांडसदृशं आरोहिणः-आश्रितवतो, मे-मम दरभरं-भयपूरं हर-अपनय, तथा भव एव दुरुतरो-दुर्लंघ्यो यो

नीरपूरो-जलपूरः स तस्मिन् भवदुरुत्तर नीरपूरे, परं पारं देहि देहि, भूयो बहु असमंजसेन–लोक-धर्मविरुद्धचरणलक्षणेन-कदाचरणेन निरंतरं–सततं चरितुं-प्रवर्तितुं शीलं यस्य स, तथा तस्य एवं विधस्य मम । अत्र पंचविंशती काव्येषु वसन्त-तिलका छन्दः ॥ २५ ॥

अविलयमकलंकं सिद्धिसंपत्तिमूलं,
भवजलरयकूलं केवलंधारिणोऽलम् ।
चरणकमलसेवा लालसं किंकरं ते,
विमलमपरिहीणं, हे महावीर ! पाहि ॥ २६ ॥

अविलयेत्यादि । अविलयं-अक्षयं अकलंकं–निर्दोषं सिद्धि-सम्पत्तिमूलं-मुक्तिसंपत्कारणं भव एव जलरयो-नीरप्रवाहो भव-जलरयस्तस्य कूलमिव कूलं तत्तथा, संसारोदधितटभूतं ईदृक्केवलज्ञान धारिणो बिभ्रतोऽलमत्यर्थं, ते-तव चरणकमलसेवा-लालसं पदकमलपर्युपास्ति परं किंकरं–दासं मामिति गम्यते । हे महावीर ! वर्द्धमानप्रभो ! पाहि-रक्ष । पुनः किंभूतं केवलं वि-मलं सर्वावरणमुक्तं अपरिहीणं संपूर्णं ॥ २६ ॥ अत्र मालिनी छन्दः ।

तरुणतरणिं जीवाजीवावभासविसारणे,
सबलकरिणो मायाकुंजे दयारससारणिम् ।
चरणरमणीलीलागारं महोदयसंगमे,
सरलसरणिं सेवे मूढो गिरं तव वीर हे ! ॥२७॥

तरुणेत्यादि । हे वीर ! अहं मूढस्तव गिरं-वाणीं सेवे-आश्रयामि इत्युक्ति योगः । अथ गीर्विशेषणान्याह-तरुणतरणिं प्रचण्डसूर्यं, के जीवा ? एकेन्द्रियादयः अजीवा धर्मास्ति–

कायादयः ततो द्वन्द्वस्तेषामवभासो-यथावत्स्वरूपप्रकाशस्तस्य विसारणं-विस्तारणं तत्र, किंभूतस्य ? तव सबलकरिणो-मत्त-गजस्य कुत्र ? मायैव गुपिलत्वात् कुंजोवृक्षादि गहनैस्तत्र मायावनभंजने हस्ति तुल्यस्येत्यर्थः । पुनरिदं विशिनष्टि, दया-रससारिणि कृपाजलकुल्यां, चरणरमणीलीलागारं चारित्ररामा क्रीडागृहं महोदयसंगमे अपवर्गप्राप्तौ सरलसरणिं ऋजुमार्गं । अत्र हरिणीनाम छन्दः ॥ २७ ॥

लसंतं संसारे सुरनर समुल्लासकरणं,
वहे वारंवारं तव गुणगणं देव ! विमलम् ।
अपारं चित्ते वा बहुल सलिले बिंदुनिवहं,
महापारावारेऽमरणभय ! कल्लोलकलिले ॥२८॥

लसंतमित्यादि। लसंतं-प्रसरंतं संसारे-लोके सुरनरसमुल्लासकरणं देवमानवहर्षजनकं, हे देव ! एवंविधं तव गुणगणं-ज्ञानादिगुणग्रामं वारं २-पुनः २ अहं चित्ते-मनसि वहे-धारयामि, असाधारण धारणया संस्मरामीत्यर्थः। किंभूतं गुणगणं ? विमलं-उज्वलं अपारं-अनन्तं, कमिव ? महापारावारे-स्वयंभूरमणाख्य समुद्रे बिंदु निवहं वा, वा शब्द इवार्थः, बिंदुनिवहमिव-जल-बिंदुवृन्दमिव अपारं-असंख्यं यथाहि-चरमाब्धौजलबिंदु सं-ख्याकर्त्तु न शक्यते, तथा भगवद्गुणानामपि एतच्चोपमानं देशतः प्रभुगुणानामनन्तत्वात् । किंभूते ? महापारावारे-बहुलसलिले भूरिजले-कल्लोलकलिले-तरंगगहने, हे अमरणभय ! मृत्युभय-वर्जित इति भगवत्संबोधनं ॥ अत्र शिखरिणीनाम छन्दः ॥२८॥

गुंजापुंजारुणकररुहाऽऽयाप संपन्नबाहो,
मंदारामे कुसुमसमयं वीरदेवाविलम्बम् ।

गंगानीरामलगुणलवं ते समुच्चारिणे मे,

सिद्धावासं बहुभवभयारंभरीणाय देहि ॥२९॥

गुंजेत्यादि। गुंजापुंजवदरुणा आरक्ताः कररुहा नखा यस्य स तत्सम्बोधनं। आयामो दैर्घ्यं तेन संपन्नौ प्रलंबावित्यर्थौ बाहू यस्य स तत्संबोधनं। मंदारामे-कल्याणवने कुसुमसमयं-वसन्ततुं एवंविधं गुणलवं, हे वीरदेव! ते-तव समुच्चारिणे-कथकाय मे-मह्यं अविलम्बं-शीघ्रं सिद्धावासं-मोक्षं देहि। किंभूताय मह्यं? बहुभवभया-भूरिभवातंकोपक्रमखिन्नाय गंगानीरवदमलं निर्मलं गंगानीरामलेति प्रभोः संबोधनं। ननु गुणलवं समुच्चारिणे इत्यस्य कथंसिद्धिः? उच्यते-अवश्यं समुच्चारयिष्यामीति समुच्चारी तस्मै, अत्र णिन् चावश्यकाधमर्ण्ये इत्यनेनेष्यत्यर्थे गम्यमानावश्यकार्थे च णिन् प्रत्यये 'सत्येष्यदधमर्ण' इत्यनेन सूत्रेण कर्मणि षष्ठी प्राप्ति र्निषिध्यते, वर्त्तमानता प्रतीतिस्तु प्रकरणवशादित्यस्य सिद्धिः॥ अत्र मन्दाक्रान्ता छंदः ॥ २९ ॥

एवं श्रीजिनवल्लभप्रभुकृत स्तोत्रांत्यपादग्रहात्,

कृत्वा ते समसंस्कृतस्तवमहं पुण्यं यदापं मनाक्।

संसेव्यक्रम पद्मराज निकरैः श्रीवीरतेनार्थये,

नाथेदं प्रथय प्रसाद विशदां दृष्टिं दयालो! मयि॥ ३० ॥

इति श्री खरतरगच्छाधिराज श्रीजिनहंससूरि शिष्य महोपाध्याय श्रीपुण्यसागर शिष्येण वाचक

पद्मराज गणिना कृतं

भावारिवारणांत्यपादसमस्यामयं समसंस्कृतस्तवनं।

एवमित्यादि। एवं पूर्वोक्त प्रकारेण श्रीजिनवल्लभप्रभुभिः श्रीजिनवल्लभपूज्यैः कृतं यत्स्तोत्रं-स्तवनं भावारिवारणाभिधमस्य योऽन्त्यस्तुर्यः पादस्तस्यग्रहो-ग्रहणं आश्रयणं स तस्मात्। हे प्रभो! ते-तव समसंस्कृतस्तव-संस्कृतप्राकृतशब्दैः सममेकसदृशं संस्कृतं-संस्करणं समसंस्कृतं तेन संबद्धः-ग्रथितः स्तवः-स्तवनं समसंस्कृतस्तवस्तं कृत्वा-अहं स्तवकर्त्ता यन्मनाक किंचित्पुण्यं सुकृतं आपं प्राप्तवान्। संसेव्यं सेवनीयं क्रमपद्मं-चरणकमलं यस्य स तत्संबोधनं। हे संसेव्यक्रमपद्म! कैः राजनिकरैः पार्थिवसार्थैः हे श्रीवीर! वर्द्धमानविभो! तेन पुण्येनाहमिदमर्थये याचे-प्रार्थनामेव प्रकटयति। हे नाथ! हे दयालो! कृपापर! प्रसादविशदामनुग्रहोज्ज्वलां स्वीयां दृष्टिं दृशं मयि भक्त्या स्वकर्त्तरि प्रथय-विस्तारय, यथा तव सौम्यदृग् विलोकनेन मम सर्व समीहित सिद्धिर्भवतीति भावः। किंचेह-संसेव्य-क्रम-पद्मराजेत्यनेन-पदेन श्लिष्टं कविना पद्मराजेति स्वनामसूचितं॥ अत्र शार्दूल विक्रीडितं नाम छन्दः॥ ३०॥

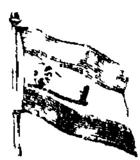
इति श्री पुण्यसागर महोपाध्याय शिष्य पद्मराज
वाचकेन विरचिता—
श्रीभावारिवारणाभिधस्तवतुर्यपादनिबद्ध—
समसंस्कृतसमस्यास्तव वृत्तिः।

प्रशस्तिः ।

खरतरगणे नवांगी-वृत्ति कृता-मभयदेवसूरीणां ।
वंशे क्रमादभूवन् , श्रीमज्जिनहंससूरीन्द्राः ॥ १ ॥
तेषां शिष्य वरिष्ठाः, समग्र-समयार्थ निष्ककषपट्टाः ।
श्रीपुण्यसागर महो-पाध्याया जज्ञिरे विज्ञाः ॥२॥
तेषां शिष्यो विवृत्तिं, वाचकवर-पद्मराज-गणिरकरोत् ।
भावारिवारणांतिम, चरणनिबद्ध स्तवस्यैतां ॥ ३ ॥
ग्रह करण दर्शनेन्दु (१६५९) प्रमितेऽब्दे चाश्विनासित दशम्यां ।
श्रीजेसलमेरुपुरे, श्रीमज्जिनचन्द्रगुरु राज्ये ॥ ४ ॥
अत्र यदुक्तमयुक्तं, मतिमांद्यादनुपयोगतश्चापि ।
तच्छोध्यं धीमद्भिः, प्रसादविशदाशयैः सद्भिः ॥ ५ ॥

श्रीरस्तु ।

अनन्यअशून्ययुग-विक्रमवर्ष-राज्ये,
शुभाश्विने स्मरतिथौ कुजवासरे च ।
कोटापुरे विनयसागर साधुना हि,
शिष्योपकारि सुगुरोः प्रतिलेखितेयं ॥ १ ॥



श्री :

वाचनाचार्य श्रीपद्मराजगणिनिर्मित-स्वोपज्ञ-
वृत्तिसुशोभितयमकमयम्-

श्रीपार्श्वनाथ-लघु-स्तोत्रम् ।

(भुजङ्गप्रयात छन्दः)

समानो ! समानोऽसमानो समानो ,
महेला महेला महेला महेला ।
सितारासितारासितारासितारा-
वधीरावधीरावधी रावधीरा ॥ १ ॥
गमाभागमाभागमाभागमाभा-
गमीरो गमीरोऽगमी रोऽगमीरो ।
गवीरा गवीरागवीरागवीरा-
ऽसुधा माऽसुधामा सुधामासुधामा ॥२॥ युगलकम् ।

व्याख्या—समानो, गमाभा, इत्यादि वृत्तद्वयेन संबन्धः । हे पार्श्वनाथ ! त्वं मा-मां अव-रक्ष । किम्भूतस्त्वम् ? समेषु-साधुषु आ-समन्तात् नुः-स्तुतिर्यस्य स तदामंत्रणं हे समानो ! । पुनः किम्भूतः ? सह मानेन-पूजया वर्त्तते यः सः समानः । पुनः कीदृक् ? न समानः असमानः असदृशः, अथवा असमानः शोभमानो गुणैरिति शेषः, अस दीप्त्यादानयोः इति धातुपाठवचनात् । पुनः कीदृशः ? समानः-सगर्वः तन्निषेधादसमानः-गर्वरहित इत्यर्थः । पुनः कीदृशः? महेलेति-महती स्त्री आमा

रोगा हेला क्रीडा, एता अस्यति-निराकरोतीति महेलाः, महे-
ला आमवत् हेलया अस्यतीति वा। पुनः कीदृशः महती ईडा स्तुति
र्महेडा, महाः-उत्सवास्तेषां इला-भूमिः स्थानं महेलामहेलाः
डलयोरैक्यान्महेलाः, यथोक्तम्-यमकश्लेषचित्रेषु, बवयोर्डल-
योर्नमित्। नानुस्वारविसर्गौ तु, चित्रभंगाय संमतौ ॥ १ ॥ सितं
विध्वस्तं आरं-अरिसमूहो येन स तदामंत्रणं हे सितार !। पुनः
कीदृशः ? असिःखड्गः तारा-कनीनिका नक्षत्र सितः श्यामः असिता
रासितस्तदामंत्रणं हे असितारासित !, आरा-शस्त्री असिः-
कृपाणस्तारं-रूप्यम् एतानि अवधीरयति-अवगणयतीति आ-
रासितारावधीरस्तदामन्त्रणं, हे आरासितारावधीर ! अवेति-
योजितम् , पुनः कीदृक् ? धीरेषु अवधिः-सीमा धीरावधिः ।
पुनः कीदृशेन ? रावेण-ध्वनिना धियं-बुद्धिं राति-ददाति रावधी-
राः 'क्विप् प्रत्ययः' यमकत्वाद्विसर्गादुष्टता, क्वचित् रुद्रटा-
लङ्कारादौ तथादर्शनात् ॥ १ ॥ गमाभा, गमैः-सदृशपाठै-
राभान्तीति गमाभाः आगमाः- सिद्धान्ता यस्य स गमाभाग-
मस्तदामंत्रणं-हे गमाभागम ! आभाया आगमेनाभातीति आभा-
गमाभः, आ-समन्तात् भागो-भागधेयं तस्य मा-लक्ष्मीस्तया
भातीति वा, न गच्छतीत्यगा-नित्या मा-ज्ञानं तां भजतीति अग-
माभाग् तदामन्त्रणं हे अगमाभाग् , अभीरो-निर्भयः, गभीरो-गम्भी-
रः अगाः सर्पास्तेषां भीः अगभीः, रोगभी-रुजूभयं रो-अग्निः,एभ्यो
ऽवतीति तदामन्त्रणं हे अगभीरोः !, यमकत्वात् क्वचिदनुस्वा-
रादौष्ट्यम् । पुनः कीदृशः ? गोः-स्वर्गलक्ष्मीः गवी तां रातीति
गवीराः, गवि कामौ, इः-कामो रागः-अभिष्वङ्गस्तावेव वीरा-
गौ-सुभटसर्पौ तौ विशेषेण ईरयति यः स तत्सम्बोधनं हे
इरागवीरागवीर !। पुनः कीदृक् ? असून्-प्राणान् दधतीति अ-
सुधाः-प्राणिनस्तेषु मां-लक्ष्मीं सुष्ठु दधाति-पुष्णातीति असु-
धामासुधाः 'उभयत्र क्विप्प्रत्ययः'.मा मां इति प्राग्योजितम्।

पुनः कीदृशः? सुष्ठु धाम-तेजस्तस्य आ-श्रीस्तस्याः सुष्ठु धाम-गृहं सुधामासुधाम! 'आ' इत्याश्चर्ये संबोधने वा ॥ २ ॥

घनाभाघनाभाऽघनाभाघनाभा
कलापं कलापं कलापंकलापम् ।
गदाभोगदा भोगदा–भोगदाभो,
दितानंदितानं दितानंदितानं ॥ ३ ॥

महा वामहावाऽऽमहावा महावा–
गतारं गतारंगतारं गतारं ।
समाया-समायाऽसमायाऽसमाया–
भवेशं भवे शंभवेशं भवेशम् ॥४॥ युग्मम् ॥

व्याख्या—घनाभा, महावा, अत्रापि वृत्तद्वयेन संबन्धः। हे भव्य! भवे–संसारे मह–पूजय पार्श्वजिनं प्रक्रमात्संबध्यते। कीदृशं जिनम्? घनस्य–देहस्य आभा–कान्तिः (यस्य सः) घनाभा अघनाभः अघस्य-पापस्य नाभो-विनाशो यस्मात्स अघनाभः, 'णभतुभ हिंसायामिति धातुपाठवचनात्, आ–समन्ताद् घनः–प्रचुरः आभाकलापः–शोभासमूहो यस्य स अघनाभाकलापः, ततो विशेषणत्रयकर्मधारयस्तम्। पुनः कीदृशं? कलानां–विज्ञानानाम् आपः–आप्तिर्यत्र स तम्। पुनः कीदृशं? कलो-मधुरः अपङ्को-निष्पापो लापो-वचनं यस्य स तं कलापङ्कलापम्। पुनः कीदृशं? गदानां–रोगाणां आभोगोविस्तारस्तं दाति–लुनाति द्यति–खण्डयति वा यः स गदाभोगदाः क्विप्प्रत्ययः, भोगस्य–सुखस्य दा–दानं तेन आ–भाति बभस्ति–शोभते इति भोगदाभम् औषधकल्पं कर्मरोगापहारित्वात्, यदुदितं–वचनं तेन आनन्दिता–आह्लादिता

आनाः-प्राणाः प्राणिनो येन, धर्मधर्मिणोरभेदोपचारात् स त-था, ततो विशेषणद्वयंकर्मधारयः। पुनः कीदृशं? दितः-खण्डि-तः-अनन्दितानः-असमृद्धिविस्तारो येन स तं दितानन्दिता-नम्॥ ३॥

'महावा०' मह-पूजयेति प्राक्संबद्धम्, वामः-कन्दर्पो हावो-मुखविकारः, वामश्च हावश्च वामहावौ, न विद्येते वाम-हावौ यस्य स तथा, 'वामः-कामे सव्ये पयोधरे उमानाथे प्रति-कूले' इति हैमानेकार्थवचनात्, आमान्-रोगान् हन्तीति आमहः, अवतीति अवः, आ-समन्तान्महती-योजनगामिनी वाग्-वाणी यस्य सः, न विद्यते तारं-रूप्यं सर्वपरिग्रहोपल-क्षणं यस्य स तथा, ततो विशेषणपञ्चकर्मधारयः तं तथा। पुनः कीदृशम्? गतोऽरङ्गो यस्याः सा गतारंगा-याताऌक्ष्मीः तीर्थकृत्संबन्धिनी तया राजते यः स तं गतारङ्गतारं, गतं-ज्ञानं तस्य आरः-प्रीतिर्यस्य स तम्, ये गत्यर्थास्ते प्राप्त्यर्था ज्ञाना-र्थाश्च इत्युक्तेः, अथवा, गायन्तीति गा-भगवद्गुणगातारस्तान् तारयतीति स तं गतारम्। पुनः कीदृशं? समं-सर्वं आया-सं-भवभ्रमणोद्भूतं प्रयासं मीनाति-विध्वंसयतीति समाया-समायः, असमः-असदृशः अयो-भाग्यं यस्य स असमायः, असमायाभो-निर्मायशोभो वेशो-नेपथ्यं यस्य सः असमाया-भवेशः, वेशो वेश्यागृहे नेपथ्ये च इति हैमानेकार्थोक्तेः, ततः पदत्रयंकर्मधारये तं, भवे इति प्राग्व्याख्यातम्; शं सुखं तस्य भवः-उत्पत्तिर्यस्मात्स शम्भवः, स चासौ ईशश्च-स्वामी शंभ-वेशस्तम्। पुनः कीदृशं? भवः-शिवस्तद्वत् इं कामं श्यति-विनाशयतीति भवेशस्तम्॥ ४॥

क्षमारक्ष मारक्षमा रक्षमार!

प्रभाव प्रभावप्र भाव प्रभाव।

परागोऽपरागोपरागोऽपरागो-
वदाताऽवदातावदाताऽऽवदाता ॥ ५ ॥

व्याख्या—'क्षमारक्ष०'। हे क्षमारक्ष! पृथ्वीपालक! रक्ष पालय मा मां, मारः-स्मरः स एव क्षो-राक्षसस्तं मारयतीति मारक्षमारस्तत्संबोधनं हे मारक्षमार! प्रभावः-अनुभावः प्रभा-कान्तिस्ताभ्याम् अवति-प्रीणातीति सः, ततः सम्बोधनम्, प्रकर्षेण भासत इति प्रभावो, वप्रः-प्राकारस्तस्य भावः-प्राप्तिर्यस्य तदामन्त्रणम्, यदि वा प्रगतो भावो-जन्म यस्य स तदामन्त्रणम्, प्रकृष्टो भावः-स्वभावो यस्य स तदामन्त्रणम्, किंभूतः परः-प्रकृष्टोऽगो-वृक्षोऽर्थादशोकतरुर्यस्य स परागः, यदि वा परा आ-समन्तादगौः-वाणी यस्यासौ परागुस्तदामन्त्रणं हे परागो!, अप गतो राग एव उपरागः-उपप्लवो यस्य सः अपरागोपरागः, न विद्यन्ते परे-वैरिणो यस्य सोऽपरस्तदामन्त्रणं हे अपर! पुनः कीदृशस्त्वम्? आगः-पापम् अवद्यति-खण्डयतीति आगोवदाता 'आगः स्यादेनोवद्यमंतौ' इत्यनेकार्थोक्तेः, अवदाता-निर्मला अवदाताः-चरित्राणि यस्य स तथा, तदामन्त्रणं हे अवदातावदात! पुनः कीदृशस्त्वम्? 'अव रक्षण-कान्ति प्रीत्यादिषु, इति धातुपाठोक्तेः-आवनम् आवः-प्रीतिस्तं ददातीति आवदाता ॥ ५ ॥

इत्थं मया परमया रमया प्रधान-
स्तोत्रं पवित्रयमकैर्विहितं हितं ते।
पार्श्वप्रभो! त्रिभुवनाद्भुतपद्मराज-
दिन्दीवरच्छवितनो! वितनोतु सातम् ॥ ६ ॥

॥ इति श्रीपार्श्वनाथलघु-स्तवनम् ॥

व्याख्या—'इत्थं मये'–ति। इत्थम्-अमुना प्रकारेण मया विहितं-कृतं ते-तव स्तोत्रं-स्तवनं हे पार्श्वप्रभो! सातं-सुखं वितनोतु-विस्तारयतु। किम्भूतं स्तोत्रं? पवित्रयमकैः-निर्दोषयमकालङ्कारबद्धकाव्यैः, हितं हितकारि। परमया उत्कृष्टया रमया लक्ष्म्या प्रधान!, इत्यादीनि संबोधनान्तानि श्रीपार्श्वनाथस्य विशेषणानि ज्ञेयानि। त्रिभुवने जगत्त्रये अद्भुता अत्युत्कटा पद्मा रूपश्रीर्यस्य स त्रिभुवनाद्भुतपद्मस्तदामन्त्रणं क्रियते हे त्रिभुवनाद्भुतपद्म! राजत् शोभमानं यदिन्दीवरं नीलकमलं तेन सदृग् छविर्यस्या सा ईदृशी तनुर्यस्य स, राजदिन्दीवरच्छविर्तनुस्तदामंत्रणं क्रियते–हे राजदिन्दीवरच्छवितनो! कविना निजमतिचतुरतया 'पद्मराज, इति स्वनाम सूचितम्॥ ६॥

इति श्री खरतरगच्छाधिराजश्रीमच्छ्री श्रीजिनहंससूरिसूरीश्वरशिष्य श्रीपुण्यसागरमहोपाध्यायश्रीपद्मराजोपनिर्मिता स्वोपज्ञश्रीपार्श्वजिनयमकस्तववृत्तिः समाप्ता विद्वद्भिर्वाच्यमाना चिरं नन्दतात् श्रेयः॥

उपाध्याय श्रीपद्मराजगणिनामन्तेवासी विद्वज्जनवरिष्ठ पंडितश्रीकल्याणकलशगणि सुन्दराणां शिष्योपाध्याय श्रीआनन्दविजयगणिपुङ्गवानामन्तिषद्वाचनाचार्य्य श्रीसुखहर्षगणिवराणा शैक्षपंडितप्रवर नयविमलगणिनां सतीर्थ्येन भुवननन्दनगणिनाऽदः स्तवनं लिखितम्। संवति १७४१ प्रवर्त्तमाने चैत्रवदिपक्षे १४ वारसोमे श्रीडेलाणामध्ये श्रीखरतरगच्छे श्रीमच्छ्री श्रीजिनचन्द्रसूरि तत्शिष्य पंडित जैतसीलिखितं॥

श्रीः

खरतरगच्छीय श्री जिनभुवनहिताचार्य प्रणीता
दंडकमया वाचनाचार्य श्री पद्मराज
निर्मिता--सवृत्तिका—

卐 जिन-स्तुतिः । 卐

प्रणयविनयपूतस्वांतकांतप्रभूत,
क्षितिपति पुरुहूत श्रेणिभिर्योभिनूतः ।
शिवपथरथसूतस्तात्सकल्पद्रुभूतः,
सततमनभिभूतः श्रेयसे नाभिसूतः ॥ १ ॥

भुवनहित सूरि विरचित रुचिर-गुणोद्दंड दण्डक स्तुत्याः ।
व्याख्या विदधामि गुरोः, प्रसादतो मुग्धबोधार्थम् ॥ २ ॥

इह दंडकस्तुतिप्रारंभे । पूर्वं दंडक परिपाटी प्रदर्श्यते । तथाहि–षड्विंशत्यक्षरा-छंदस उपरि चंड वृष्ण्यादयो दंडका-स्तावद्भवंति यावदेको न सहस्राक्षरः पादः, यदुक्तं छंदोवृत्तौ–

एकोनसहस्राक्षर–पर्यंता दंडकाह्वयः प्रोक्ताः ।
वर्णत्रिकगणवृद्ध्या, न द्वितयाद्या महामतिभिः ॥ १ ॥

अत्र स्तुतौ तु संग्रामनामा दंडकः । तत्र प्रतिचरणं सप्त-पंचाशदक्षराणि ५७, तत्रादौ नगण द्वयं ततः सप्तदश रगणा भवंतीति । चतुः पद्यात्मिका च स्तुतिस्तत्राभिधेयं यथा–प्रथमे पद्ये एकादि सर्व जिनस्तवनं । द्वितीये सर्वक्षेत्रकालादि भावि-तीर्थकृत्वर्णनं । तृतीये सिद्धान्तस्तुतिः । चतुर्थे शासन श्रुत-देवतादि स्तवनमिति । अतः प्रथमे दंडके चतुर्विंशति जिनान् स्तौति ॥

नतसुरपतिकोटिकोटीरकोटीतटीश्लिष्टपृष्ट
प्रकृष्टद्युति द्योतिताशाननाकाशसर्वावकाशप्रदे-
शोल्लसन्नीलपीतारुणश्यामवर्णाढ्यरत्नावली ।

प्रसृमरकरवारविस्तारनिर्मेरनीरांतरानीरजन्मे-
दिरा सारसंभारसारानुकारप्रकारक्रमन्यासपा-
वित्र्यपात्रीकृतानार्यवर्यार्यभूमंडली ।

बहुलतिमिरराशिनिर्नाशिभासामधीशांशुसंदो-
हसंकाशसत्केवलज्ञानसंलोकितालोकलोकस्वरू-
पासुरूपाढ्यवैताढ्यवासीशमुख्यैर्नृमुख्यैः श्रिता

जिनपतिविततिस्तनोतु श्रियं श्रायसीं ज्यायसीं प्रा-
णभाजां सदा भक्तिभाजां कलाकेलिकेलीसमारंभरं-
भा महास्तंभहेलादलीकारकुंभीशसाराद्भुता ॥ १ ॥

व्याख्या—जिनपतीनां ऋषभादिचतुर्विंशत्यर्हतां वित-
तिः श्रेणिः जिनपतिविततिः, प्राणभाजां प्राणिनां श्रायसीं मुक्ति-
भवां श्रियं—लक्ष्मीं शोभां वा तनोतु—विस्तारयतु इत्यन्वयः।
श्रेयसि भवं श्रायसं, देविकाशिंशिपादित्यूहदीर्घसत्रश्रेयसामात्
इति सूत्रेण अणि प्रत्यये श्रायसमिति, स्त्रियां तु श्रायसीति
सिद्धम्। किंविशिष्टां श्रियं ज्यायसीं—अतिप्रशस्यां वृद्धां वा।
ज्यायान् वृद्धे प्रशस्ये च इत्यनेकार्थोक्तेः। किंभूतानां प्राणभाजां-
सदा-नित्यं भक्तिभाजां-सेवापराणाम्। किंविशिष्टा जिनपतिवि-
ततिः, कलाकेलिः—कन्दर्पस्तस्य केली क्रीडा तस्याः समारम्भः-
समुत्पादः स एव रम्भा महास्तम्भः—कदलीप्रकाण्डस्तस्य हेल-

या-लीलया यो दलीकारो-भञ्जनं तत्र कुम्भीशवत्-गजेन्द्रवत् सारेण-बलेन अद्भुता-आश्चर्यकारिणी, कलाकेलिकेलीसमारम्भरम्भामहास्तम्भहेलादलीकारकुम्भीशसाराद्भुता। पुनः किंभूता जिनपतिविततिः नता-नम्रीभूता याः सुरपतिकोटय इन्द्राणां चतुःषष्टिसंख्यत्वेऽपि ज्योतिष्केन्द्राणां चन्द्रसूर्याणामसंख्यातत्वविवक्षयाऽदोषात्, इन्द्रकोटयस्तासां कोटीराणि-मुकुटानि तेषां कोटीतटीषु-अग्रभागेषु श्लिष्टानि-सम्बद्धानि पुष्टप्रकृष्टद्युतिभिः-पीवरप्रसरकान्तिभिः द्योतिता-आशाननानि च दिङ्मुखानि आकाशसर्वावकाशप्रदेशाश्च गगनसर्वांतराल प्रदेशा आशाननाकाशसर्वावकाश प्रदेशा यैस्तानि उल्लसन्नीलपीतारुणश्यामवर्णैराढ्यानि समृद्धानि यानि रत्नानि इन्द्रनीलादीनि तेषामावली-श्रेणिस्तस्याः प्रसृमराः-प्रसरणशीला ये करवाराः-किरणकलापास्तेषां विस्तार आभोगः स एव, निर्भरं-निर्मर्यादं प्रभूतं नीरं-जलं तस्य अन्तरा-मध्यभागे नीरजन्मेन्दिरायाः-पद्मशोभायाः सारः-श्रेष्ठो यः सम्भारः समूहस्तद्वत्सार उचितोऽनुकारप्रकार आयव्ययविधि र्येषां ते तथा, तथाविधानां क्रमाणां-चरणानां न्यासेन-निक्षेपेण पवित्र्यपात्रीकृता-नैर्मल्यास्पदीकृता अनार्या-म्लेच्छभूमिः वर्या-प्रधाना आर्यभूमण्डली च-आर्यदेशभूमिर्यया सा। नतसुरपति०। आर्यानार्यदेशेषु भगवद्विहारस्यास्खलिततया सम्भवात्। पुनः किंभूता जिनपतिविततिः-बहुलतिमिरराशेः प्रचुराज्ञानपटलस्य निर्नाशो यस्याः। पाठान्तरे तस्य वा निर्नाशीति, केवलज्ञानविशेषणं। अथवा बहुलतिमिरराशिनिर्नाशी प्रभूततमःस्तोमविध्वंसी यो भासामधीशः सूर्यस्तस्यांशुसन्दोहः कर प्रकरस्तेन संकाशं समानं सत्प्रधानं सत्यं वा यत्केवलज्ञानं तेन संलोकितं सम्यग्दृष्टं अलोकलोकयोः स्वरूपं यया सा बहुलतिमिर०। भासामधीश इत्यत्र वाचांनिध्यादिशब्दवत्षष्ठ्यलुक्। पुनः

किंभूता जिनपतिविततिः सुष्ठुरूपेण–सौन्दर्येण आढ्या युक्ता ये वैताढ्यवासिनो विद्याधरास्तेषामीशाः स्वामिनस्तन्मुख्यै-स्तत्प्रभृतिभिः सुरूपाढ्यवैताढ्यवासीशमुख्यैः नृमुख्यैः पुरुषश्रेष्ठैः श्रिता सेविता। इति प्रथम दण्डक व्याख्या॥ १॥

अथ द्वितीये सर्वजिनानभिष्टौति---

अमरनिकरकल्पकिंकिल्लिसम्फुल्लफुल्लावलीप्रान्तवे-
ल्लन्मधुस्यन्दनिःस्पन्दबिन्दुप्रपापानसंजायमाना
ममानध्वनिध्वानमन्धानरोलम्बमत्ताङ्गना।

विरचितनवरङ्गभङ्गीतरङ्गीभवच्चङ्गरागाङ्गसङ्गीति–
रीतिस्थितिस्फीतिसंप्रीणितिप्राणिमारङ्गचित्तं
महानन्दभित्तं रमाकन्दवृत्तं सुवृत्तं सदा॥

समवसरणमण्डपं भूषयन्तो नयं नव्यभव्यान् वच-
श्चस्तरीविस्तरैस्तर्जयन्तो भयं भीमभावारिवीरो–
दयं निर्दयं दान्तदुर्दान्तसर्वेन्द्रियाः।

विदधतु विबुधामबाधामगाधा जिनाधीश्वरा भा-
स्वरा मेदुरां सम्पदं दन्तिदन्तान्तराकापतिप्रान्त-
विश्रान्तकान्तिच्छटाकूटपेटद्दूयशः सश्रयाः॥२॥

व्याख्या—जिनाः सामान्यकेवलिनस्तेषां मध्येऽष्टमहा-प्रातिहार्यादिसमृद्ध्या, अधि-आधिक्येन ईश्वराः स्वामिनः अधीश्वरा जिनाधीश्वरास्तीर्थंकरा देहिनां–प्राणिनां सदा–नित्यं सम्पदं मुक्तिरूपां विदधतु–कुर्वन्तु। कीदृशानां देहिनां विबुधां विशेषेण बुध्यन्ते जीवाजीवादिपदार्थसार्थं जानन्तीति क्विपि प्रत्यये विबुधस्तेषां सम्यग्दृष्टिविदुषामित्यर्थः। किंविशि–

ष्टां सम्पदं मेदुरां पुष्टां। पुनः किंभूतां सम्पदं अबाधां-बाधारहितां। किंविशिष्टा जिनाधीश्वराः-अगाधा-गम्भीराः। पुनः किंभूता जिनाधीश्वराः-भास्वराः कान्त्यादीप्यमानाः। पुनः किंभूता जिनाधीश्वराः-दन्तिदन्तवत्-हस्तिदन्तवत् शुभ्रत्वेन अन्तः स्वरूपं यस्य स ईदृग् यो राकापतिः पूर्णिमाचन्द्रस्तस्य प्रान्तेषु विश्रान्ताः स्थिता याः कान्तिच्छटाः-कान्तिपङ्क्तयः। मध्यस्थितानां चन्द्ररुचीनां कलङ्ककलुषितत्वेनाविवक्षणात्। तासां कूटं वृन्दं। अतिशुद्धत्वख्यापनार्थमित्थमुपन्यासः। तद्वत्, अथवा तासां कूटेन दम्भेन पेटत् पुञ्जीभवन् यशःसञ्चयः-कीर्तिनिचयो येषां ते दन्तिदन्तान्त०। पिट् शब्दसंघातयोरितिधातोः शतृप्रत्यये पेटत् इति भवति। किंकुर्वन्तो जिनेश्वराः-समवसरणमेव मण्डप आश्रयविशेषस्तं समवसरणमण्डपं भूषयन्तः अलङ्कुर्वन्तः। किंविशिष्टं समवसरणमण्डपं असुरनिकरेणासुरवृन्देन क्लृप्तो निर्मितो यः किंकिल्लिरशोकतरुस्तस्य सम्फुल्ला विकस्वरा या फुल्लावली पाठान्तरे वा पुष्पावली कुसुमश्रेणिस्तस्याः प्रान्तेषु वेल्लन् क्षरन् यो मधुस्यन्दो मकरन्दरसस्तस्य निस्पन्दा निश्चला ये बिन्दवस्त एव प्रपा पानीयशाला तत्र यत्पानं मकरन्दबिन्दुवृन्दाऽऽरसास्वादनं तेन संजायमानं असमानयोरसदृशयो र्ध्वनिध्वानयो र्लघुमहानादविशेषयोः सन्धानं निरन्तरतया विधानं यासां ता एवंविधा या रोलम्बमत्ताङ्गना मत्तमधुकर्यस्ताभिर्विरचिताः कृता नवरङ्गभङ्गीभिर्नूतनरङ्गविच्छित्तिभिस्तरंगी भवद्बङ्गरागाङ्गा प्रादुर्भवद्रम्यरागाभ्युपाया संगीतिरीतिः संगीतपद्धतिस्तस्याः स्थितिरवस्थानं तस्याः स्फीतिर्वृद्धिस्तया संप्रीणितानि आनन्दितानि प्राणिन एव सारंगा मृगाः प्राणिसारंगास्तेषां चित्तानि येन स तं भ्रमरनिकर०। पुनः किंविशिष्टं समवरणमंडपं-महानन्दस्य-परमपदस्य भित्तमिव खण्डमिव महानन्दभित्तं। समवसरणस्थितजनानां निर्बाध-

स्थायिनामिव क्षुत्पिपासादिपीडा विगमात्परमाल्हादोत्पादना- द्वेत्युपमानं। पुनः कीदृशं समवसरणमंडपं रमाया-मोक्षलक्ष्म्याः कन्दमिव वृत्तं चरित्रं यत्र तत् रमाकंदवृत्तं। पाठान्तरे रमाक- न्दवित्तं तत्रैवं व्याख्या, रमया-रत्नादिमयप्राकारत्रयाद्यात्मि- कया श्रिया कं-सुखं ददातीति रमाकन्दः वित्तः प्रसिद्धस्ततः कर्मधारये रमाकंदवित्तस्तं। पुनः कीदृशं समव० सुष्ठु-वृत्तं वर्तुलं सुवृत्तं। पुनः किंकुर्वन्तो जिनेश्वराः वचश्चस्तरीवचन- वैचित्री लक्षणया वा वाक्चातुरी तस्या विस्तरैः प्रपञ्चैः वच- श्चस्तरीविस्तरैः नव्यभव्यान् नयं न्यायमार्गं नयन्तः-प्रापयन्तः, णिञो द्विकर्मकत्वादत्र कर्मद्वयं। पुनः किंकुर्वन्तः भयं तर्जय- न्तो-निराकुर्वन्तः। किंभूतं भयं भीमभावारिवीरेभ्यो रौद्ररागा- दिसुभटेभ्य उदय उत्पत्ति यस्य तद्भीमभावारिवीरोदयं। किं- विशिष्टा जिनेश्वराः निर्दयं निष्करुणं यथा स्यात्तथा दान्तानि वशीकृतानि दुर्दान्तानि-दुर्दमानि सर्वाणि इन्द्रियाणि यैस्ते दा- न्तदुर्दान्तसर्वेन्द्रियाः॥ २॥

अथ तृतीये सिद्धान्तं स्तौति—

कुनयनिचयवादसंवादि-दुर्मादकादंबिनीसा-
दरोदोदरीदूरसंचारतारीभवद्भूरिझंझास-
मीरं सुतीरं जडापारसंसारनीराकरस्यानिशं।

कलमलदलजालजंबालनिक्षालनस्वच्छनीरं कषा-
यानलप्रज्वलज्ज्वालसंतापितांगांगिसंतापनिर्वा-
पणांभः करीरं कुटीरं लसत्-संपदां संविदा।

कुमतवितततुंगनिर्मंगसारंगनाथं शिवश्री-
सनाथं कृताघप्रमाथं महायाममायामही-
दार--सीरं गभीरं-महो मन्दिरं भावतो ।

घनतपगमसंगमं संगिभिर्दुर्गमं सभ्रमभ्राकिभूमी-
रुहं जंगमं मुक्तिमेघन्महानन्दमाकन्दराधागमं
संस्तुवे संश्रये श्रीजिनेन्द्रागमम् ॥ ३ ॥

व्याख्या—अहं श्रीजिनेन्द्रागमं-अर्हत्प्रणीतसिद्धान्तं भाव-त-आन्तरप्रीतितः संस्तुवे । सद्भूतगुणप्रतिपादनेन सम्यग् वर्णयामि । यदि वा संस्तुवे परिचितं करोमि, तथा संश्रये सेवे । किंविशिष्टं श्रीजिनेन्द्रागमं प्रमाणप्रतिपन्नार्थैकदेशपरामर्शा नया नैगमाद्यास्त एवाभिप्रेतधर्मावधारणात्मतया शेषधर्मतिरस्कारेण प्रवर्त्तमानाः कुत्सिता नयाः कुनयास्तेषां निचयः समूहस्तस्य वादः कुनयनिचयवादस्तं सम्यग् वदन्तीति कुनयनिचयवादसंवादिनस्तेषां दुर्वादो भवोन्मादः स एव कादंबिनी मेघमाला,सम्यग्बोधरविनिरोधहेतुत्वेन वागाडम्बरगर्जितसमन्वितत्वेन च, तस्याः सादे विध्वंसने रोदसी द्यावापृथिव्यावेव दरी गुहा तत्र दूरसंचारेण-अत्यन्तप्रचारेण तारीभवन् उच्चैः रवं कुर्वन् भूरिः प्रचुरो झंझासमीर इव झंझासमीरः घनाघनघनपटलपाटनपटुपवनविशेषः स तं कुनयनिचय० । पुनः किंविशिष्टं श्रीजिनेन्द्रागमं जडै मूर्खैरपारः अलब्धपारः । डलयोरैक्याद्वा, जन्मजरामरणादि दुःखमेव दुस्तरत्वाज्जलं तेन अपारो यः संसार एव नीराकरः समुद्रस्तस्य जडापारसंसारनीराकरस्य सुतीरमिव सुतीरं शोभनतटं । अनिशं निरन्तरं । पुनः कीदृशं श्रीजिनेन्द्रागमं कलमलं-पापं, कलिमलं वा दुष्षमा पापं तस्य

दलानि पुद्गलास्तेषां जालं वृन्दं तदेव जम्बालं कर्दमस्तस्य निक्षालने-पाठान्तरे वा प्रक्षालनेऽपनयने स्वच्छनीरमिव-निर्मलसलिलमिव स्वच्छनीरं कलमलदलजालजम्बालनिक्षालनस्वच्छनीरं। पुनः कीदृशं श्रीजिनेन्द्रागमं कषाय एवानलो वह्निस्तस्य प्रज्वलज्ज्वालैः जाज्वल्यमानज्वालाभिः सन्तापितानि अंगानि येषां ते तथा ईदृशो येंऽगिनः प्राणिनस्तेषां यः सन्ताप उष्मा तस्य निर्वापणे उपशमने अम्भः करीरं इव अम्भः करीरः पूर्णकुम्भः स तं कषायानलप्रज्वलज्ज्वालसन्तापितांगांगिसन्तापनिर्वापणाम्भःकरीरं। वन्हे र्द्वयो र्ज्वालकीलावित्यमरकोषोक्तेरत्र ज्वालशब्दस्य पुल्लिङ्गता। पुनः कीदृशं श्रीजिनेन्द्रागमं लसत्सम्पदां स्फुरद्गुणोत्कर्षाणां संविदां सम्यग् ज्ञानानां कुटीरं आश्रयं। सम्पदा द्वौ गुणोत्कर्षे इत्युक्तेः। पुनः कीदृशं श्रीजिनेन्द्रागमं कुमतानि योगसौगतकाणादकपिलजैमिनीयबार्हस्पत्यादीनि-तान्येव वितता विस्तीर्णास्तुंगा-उन्नता निर्गतो भंगः-पराजयो येषां ते निर्भंगा दुर्जयाः सारंगाग्रजास्तेषां निर्भंगे निश्चयेन भंजने सारंगनाथ इव सारंगनाथस्तं कुमतविततः। पुनः किंविशिष्टं श्रीजिनेन्द्रागमं शिवश्रीः कल्याणलक्ष्मीरथवा शिवहेतु मोक्षहेतु र्या श्रीः शिवश्रीस्तया सनाथं सहितं शिवश्रीसनाथं पुनः किंविशिष्टं श्रीजिनेन्द्रागमं कृतः अघस्य पापस्य प्रमाथो मथनं येन स तं कृताघप्रमाथं। पुनः किंविशिष्टं श्रीजिनेन्द्रागमं महान् आयामो दैर्घ्यं यस्याः सा, एवंविधा या माया सैव मही भूमिस्तस्याः दारे विदारणे सीरं हलं महायाममायामहीदारसीरं। पुनः किंविशिष्टं श्रीजिनेन्द्रागमं गभीरं-अलब्धमध्यं, एकस्यापि सूत्रपदस्यानन्तार्थकलितत्वात्। पुनः किंविशिष्टं श्रीजिनेन्द्रागमं महसां उत्सवानां वा मन्दिरं। महस्तेजस्युत्सवे चेति हैमानेकार्थोक्तेः। पुनः किंविशिष्टं श्रीजिनेन्द्रागमं घनतमा अतिबहवो ये गमा सदृशपाठास्तेषां संगमः

संयोगो यत्र स तं घनतमगमसंगमं। पुनः किंविशिष्टं श्रीजिनेन्द्रागमं-संगिभिः संगयुक्तैर्जनैर्दुर्गमं दुर्लंघ्यं। पुनः किंभूतं-सन्नमतां प्रणमज्जनानां नाकिभूमीरुहं कल्पवृक्षं सन्नमन्नाकिभूमीरुहं। पुनः किंभूतं जंगमं-संचरिष्णुं। पुनः किंभूतं मुक्ते मोक्षस्य मेद्यन् पुष्टीभवन् महान् आनन्दोऽनन्तसुखरूपाह्लादो यस्मात् स तं मुक्तिमेद्यन्महानन्दं। पुनः किंभूतं-आनन्द एव माकन्दः सहकारस्तत्र राधस्य वैशाखस्य आगमो राधागमस्तं आनन्दमाकंदराधागमं॥ ३॥

अथ चतुर्थे श्रुतदेवीं प्रशंसति—

हिमकरकरहारनीहारहीराट्टहासो-छलत्क्षीरनी-
राकर-स्फारडिंडीरपिण्डप्रकाण्डस्फुरत्पांडिमाड-
म्बरोद्दण्ड–देहद्युतिस्तोमविस्तारिशंखच्छटा।

धवलितसकलाशिलाकीतलाकुण्डलालीढगण्डस्थ-
ला हारसंचारणाहारिवक्षःस्थलानूपुरारावसं-
राविदिङ्मण्डलाहंसवंशावतंसाधिरोहोज्वला॥

विनमदमरसुन्दरी कण्ठपीठीलुठत्तारहारामलामू-
लसंक्रान्त पादाम्बुजव्याजनिर्व्याजसंदर्शितस्वा-
न्त–विश्रान्त–सेतातिहेवाकसंभारभावोद्भवा।

भुवनहितकरं परं धाम सौवं प्रसद्य प्रदद्यान्ममाव-
द्यबन्धं विभिन्द्यान्मणीमालिका–पुस्तिकाकच्छपी
नीररुट्शस्तहस्ता विहस्ता सदा सारदा शारदा॥४॥

व्याख्या—सरस्वती-शारदा देवी प्रसद्य-प्रसादं विधाय भुवनहितकरं-विश्वहितविधायकं परं-प्रकृष्टं सौवं आत्मीयं धाम-तेजः परब्रह्माख्यं प्रदद्यात्-ददातु । तथा मम अवद्यबन्धं पाप-कर्मबन्धनं विभिद्यात्-भिनत्तु । किंविशिष्टा शारदा ? हिमकरस्य चन्द्रस्य कराः-किरणा हारो मुक्ताकलापो नीहारो-हिमं हीरस्य-ईश्वरस्य अट्टहासो-महाहास्यं । उज्वलन् क्षीरनीराकरस्य-क्षीर-समुद्रस्य स्फारो विस्तीर्णो डिंडीरपिण्डः-फेनप्रकरस्तस्य प्रकाण्डः-प्रशस्तः स्फुरन्नुल्लसन् यः पाण्डिमाडम्बरः-शुभ्रत्वा-डंबरः तद्वत् उद्दण्डा -उत्कृष्टा या देहद्युतिः-कायकान्तिस्तस्याः स्तोमः-समूहः स एव विस्तारिणी शंखच्छटा-कम्बुश्रेणिस्तया धवलितं सकलं—सर्वं त्रिलोकीतलं भूर्भुवस्स्वस्त्रयीलक्षणं यया सा हिमकर० ॥ पुनः कीदृशी शारदा ? कुण्डलाभ्यां—नानारत्न-निचयखचित-कर्णाभरणाभ्यां आलीढे-स्पृष्टे गण्डस्थले-कपोल-तले यस्याः सा कुण्डलालीढगण्डस्थला । पुनः कीदृशी शारदा ? हारस्य-मुक्तावल्याः संचारणया-कण्ठपीठनिवेशनेन हारि-मनो-हरं वक्षःस्थलं-हृदयं यस्याः सा हारसंचारणाहारिवक्षःस्थला । पुनः कीदृशी शारदा ? नूपुरारावेण—मञ्जीरसिञ्जितेन संरावि-शब्दायमानं कृतं दिङ्मण्डलं—ककुब्चक्रं यया सा नूपुराराव-संराविदिङ्मण्डला । पुनः कीदृशी शारदा ? हंसवंशे—राजहंस-कुले हंसवृन्देऽवतंसः-शेखरभूतो भारतीवाहन—सक्तः प्रधान-राजहंसस्तत्र अधिरोहेण उज्ज्वला-निर्मला शोभा वा या तथा, अथवा हंसस्य-सितच्छदस्य वंशः पृष्ठावयवस्तत्र अवतंसवत्-मुकुटवच्छोभाविधायित्वादधिरोहो यस्याः सा हंसवंशावतं-साधिरोहा । उज्वलेति पृथग्भारतीविशेषणं । वंश संघे चये पृष्ठावयवे कीचकेपि च—इत्यनेकार्थोक्तेः । पुनः कीदृशी शार-दा ? विनमन्त्यः—प्रणमन्त्यो या अमरसुन्दर्यो—देवाङ्गनास्तासां कण्ठपीठीषु-कण्ठस्थलेषु लुठन्तश्चलन्तो ये तारहारा-निर्मलमौ-

क्तिकहारास्तेषु अमलं आमूलं यावत् संक्रान्तं प्रतिबिम्बितं यत्पादाम्बुजं-चरणकमलं तस्य व्याजेन-कपटेन निर्व्याजं-निर्मायं यथा स्यात्तथा, संदर्शितः स्वान्तेषु-चित्तेषु विश्रान्त-स्थितः सेवाया अतिहेवाकोऽत्याग्रहो येषां ते स्वान्तविश्रान्त-सेवातिहेवाकास्तेषां स्वान्तविश्रान्तसेवातिहेवाकानां संसारे भावानां-जीवादिवस्तूनां उद्भवा-ज्ञानप्रादुर्भावा यया सा विनमदमरसुन्दरी० । अत्रायं परमार्थः-यथा वन्दारुवृन्दारकसुन्दरीहृदयस्थोदारहारेषु प्रचलननलिनममलिनतया प्रतिबिंबितं तथा मद्भक्तिरसिकहृदयेष्वहं भुवनभाविभावानवभासयामीति सरस्वती ज्ञापयति । पुनः कीदृशी शारदा ? मणीमालिका-विचित्ररत्नमयी जपमालिका पुस्तिका प्रतीता कच्छपी भारती वीणा नीररुद्-कमलं ततः कर्मधारये. तानि तैः शस्ता-प्रशस्या हस्ता यस्याः सा मणीमालिका० । पुन कीदृशी शारदा ? अविहस्ता-अव्याकुला , भक्तजनकार्यसाधने सावधानेत्यर्थः । पुनः कीदृशी शारदा ? सदा-नित्यं सारं-द्रव्यं ददातीति सारदा ॥ १ ॥ अथवा सन्-प्रशस्त आसारो-वेगवान् वर्षस्तं ददातीति सदा सारदा, सरस्वती ध्यानस्य विशिष्ट वृष्टिप्रदायकत्वात् ॥ २ ॥ अथ सन्तं सत्यं आसारं-सुहृद्बलं दयते-पालयतीति सदा सारदा । देङ् पालने-इति धातुपाठोक्तेः ॥ ३ ॥ अथ-असतां-असाधूनां आसारं-प्रसारं द्यति-खण्डयति या सा असदा-सारदा । 'आसारो वेगवद्वर्षे सुहृद्बलप्रसारयोरित्यनेकार्थोक्तेः' ॥ ४ ॥ अथ सदा-नित्यं सारं-जलं तद्वत् दायति-शोधयति जाड्यमलं या सा सारदा । दै प्रशोधने इत्युक्तेः ॥ ५ ॥ अथ-सारं उत्कृष्टद्रव्यं ददातीति, सारं बलं ददातीति सारदा ॥ ६ ॥ अथ-सारो युक्तो दा-दानं यस्याः सा सारदा ॥ ७ ॥ 'सारो मज्जास्थिरांशयोः । बले श्रेष्ठे च सारं तु द्रविणे न्याय्ये वा-इत्यनेकार्थोक्तेः' । सह दासैः-अमरकिंकरैर्वर्तते या सा सदासा

॥ ८ ॥ तथा रो वह्निस्तस्माद् दयते-रक्षतीति रदा ॥ ९ ॥ असदीप्त्यादानयोरिति धातुपाठोक्तेः । असनं आसः सन् प्रशस्य आदीप्तिर्येषां ते सदासा ॥ १० ॥ सत्कान्तयः आ-समन्तात् रदाहन्ता यस्याः सा सदा सारदा ॥ ११ ॥ अथ–सदा असां-अलक्ष्मीं रदति-विलिखति अपनयतीति असारदा ॥ १२ ॥ अथ-सन् विद्यमान आसो धनुर्यस्य, लज्जाद्युपलक्षणं चैतत् तत् सदासं । आरं-अरिवृन्दं द्यति–छिनत्तीति, दो 'अवखण्डने' 'सद्विद्यमाने सत्येव, प्रशस्ताविचासाधुषु इत्यनेकार्थोक्तेः' ॥१३॥ अथ–सदा नित्यं सा लक्ष्मीस्तस्या आरः-प्राप्तिस्तं ददातीति सारदा ॥१४ ॥ तद्ध्यानविशेषस्य लक्ष्मीदायकत्वादिति । अर्थचतुर्दशकं चेतश्चमत्कारकमाविर्भावितं । एवमन्येप्यर्थाः सुधिया स्वधिया यथा सम्भवमभ्यूह्याः । अत्र च भुवनहित इति पदेन कविना स्वाभिधानमसूचि । श्रीमत्खरतरगच्छीय श्री-भुवनहिताचार्येणेयं दण्डकस्तुतिः कृतेति तात्पर्यं ॥

इति दण्डकस्तुतिव्याख्या ॥

वृत्तिकार–प्रशस्तिः

खरतरगच्छाधिपति श्रीमज्जिनहंससूरिशिष्याणां ।
श्रीपुण्यसागरमहो–पाध्यानां विनेयाणुः ॥ १ ॥

भुवनयुगरसरसाब्दे, (१६४३)
वृत्तिमिमां व्यचित पद्मराजगणिः ।
यद्यत्र विवृतमनृतं,
तच्छोध्यं सहृदयैः सदयैः ॥ २ ॥

इति श्रीपुण्यसागरमहोपाध्यायशिष्य-
वाचनाचार्यवर्यपद्मराजगणि विर--
चिता दण्डकस्तुतिवृत्तिः सम्पूर्णा ।